ईश्वर स्तुति ।

दोहा ।

विघ्न हरण मंगल करण, गौरी सुत गण राज ।
ऋद्धि सिद्धि दे भक्तको, सिद्ध करो सब काज ॥

सर्व शक्तिमान परमेश्वरको नमस्कार करता हूँ। कैसे हैं यह परमेश्वर कि जिसने अपनी अपार अर्थात् नहीं है जिसका पार ऐसी मायारूपी शक्ति से सारी सृष्टिको बनाई है और सारी सृष्टिकी उत्पत्ति वा स्थिति वा प्रलयका स्थान भी यही परमात्मा है। अर्थात् सारी सृष्टि इन्हीं माया वशिष्ठ परमात्मा के अन्दर से निकलती है। और इन्हींके आश्रय स्थित रहती है। जब महा प्रलय होती है तो इन्हीं परमेश्वरमें सर्व नाम रूप जगत्लय हो जाया करता है। अर्थात् समयानुसार इस जगतकी उत्पत्ति स्थिति वा लय वारंबार होती रहती है।

यह जगदीश सारे जगत्में व्यापक होने पर भी योगियोंके हृदय देशमें बसने वाला कहा जाता है। क्योंकि परमात्माकी उपलब्धी हृदय देशमें ही योगियोंको होती है। और योगके विना इतर प्राकृत मनुष्योंको परमात्मा की प्राप्ती नहीं होती। ऐसा ही श्रीमद्भगवद्गीता में व्यास, ध्यान से पाया जाता है। सो यह है—

यं ब्रह्मा वरुणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवैर्वेदैः सांगपदक्रमोपनिषदैर्गायंतियं सामगाः ध्यानावस्थित

तद्गतेन मनसा पश्यंति यं योगिनो यस्यांत न विदु
सुरासुरगणा देवाय तस्मैनमः।

प्रिय सज्जनों! मैं अपना लेख निर्विघ्न समाप्त होनेके लिये परमेश
को नमस्कार करता हुआ मंगला चरण समाप्त करता हूँ। और स
श्रेष्ठ पुरुष भी ग्रन्थके आदिमें ऐसा ही करते आए हैं। इस का
इसे श्रेष्ठ आचरण भी कहते हैं।

सुहृद् महाशयों! यह ईश्वरी महा माया कि जिससे सारी सृ
रची गई है सो कैसी अपार है। चाहे जिधर विचार करके देखि
किन्तु इसकी हद नहीं आ सकी। जैसे, चोंटी, चाकी, सूरत, म
आदि जो २ देखने में आता है सो सब नया ही नया प्रतीत होता है
अर्थात् एक दूसरे से मिल ही नहीं सक्ता किन्तु अनन्त है।

जैसे यह अनन्त है तैसे ही विद्या, इल्म, वा विचार भी अनन्त
जो कोई पुरुष तन मन से उक्त बातों पर प्रयत्न करते हैं या करेंगे
उनको कुछ न कुछ अवश्य मिले ही गा।

देखो हमारे पूज्य पूर्वज महर्षियोंने सुख चित्त होकर विचा
किया तो उनको अनेक विद्याओंका भंडार मिला जिस से अनेक शास्
रचे जो आज तक इस भूमंडल वासी बड़े मान्य के साथ पढ़ २
अनेक विद्याओंका प्रादुर्भाव कर रहे हैं। जो कि आज कल यूरो
के वासियोंने उन्हीं ग्रन्थोंके अवलोकनसे बुद्धि की गौरवता पाकर रे
तार-विद्युद्विद्या और अनेकानेक शिल्पविद्या संबन्धी यन्त्रादि रचना क
रहे हैं। और जो २ महाशय इस विद्या में विचार करते रहेंगे उन
को अवश्य नूतन विद्याकी प्राप्ती होवेगी। क्योंकि यह ईश्वरी माया
अनन्त है इसका कभी थाह नहीं आ सकता। इस लिए मनुष्यको
पुरुषार्थ हीन कभी न होना चाहिये और यह भी न समझना चाहिये
कि जो कुछ इस समयमें विद्या प्रकट है [illegible] पदार्थ प्राप्त हो सके

उससे अधिक भय नहीं है। किन्तु मनुष्यको सदैव ऐसा समझना चाहिए कि इस जगत् में अनन्त पदार्थ गुप्त रीति से विद्यमान हैं। जैसे जैसे मनुष्य विद्या और पुरुषार्थ करेगा वैसाही वैसा फल पाता जायगा। इसी बात पर नीति वालों का यह सिद्धान्त ठीक घटता है। जैसे विदुरजी ने कहा है—

सुवर्ण पुष्पां पृथिवीं चिन्वन्ति पुरुषास्त्रयः
शूरश्च कृतविद्यश्च यश्च जानाति सेवितुम् ॥१॥

अर्थः—इसका तात्पर्य यह है कि यह पृथ्वी सुवर्ण से पुष्पित है परन्तु इन पुष्पोंको तीन ही पुरुष पा सकते हैं। एक तो शूरवीर दूसरा विद्वान् तीसरा जो इस को सेवन करना जानता है। इससे भी यही प्रतीत होता है कि अनेक प्रकार के पदार्थ इस भूमि में गुप्त है; जहाँ तक निकल सकते हों निकाल लेना चाहिए। इस से मनुष्यको दो लाभ होते हैं एक तो आप सुखका भागी बनता है और दूसरे चिरकाल पर्यन्त मरने के बाद भी विख्यात रहता है।

अथ अनुबंध चतुष्टय वरणन :—

अधिकारी अर्थात् इस पुस्तकके श्रवण का अधिकारी कौन है; विषय, अर्थात् यह पुस्तक कौनसी वार्ताको वर्णन करती है। संबंध, अर्थात् इस पुस्तकका किस २ के साथ क्या २ संबंध है। प्रयोजन, अर्थात् इस पुस्तक का प्रयोजन क्या है। इन चारोंके संगठित होनेको अनुबन्ध कहते हैं।

अथ अधिकारी वरणन

जिस पुरुषको इस पुस्तकके श्रवण ...
होवेगी वही पुरुष इस पुस्तकका
विशेष रहित विवेकादि चार साधनों

तद्गतेन मनसा पश्यंति यं योगिनो यस्यांतं न विदुः सुरासुरगणा देवाय तस्मैनमः ।

प्रिय सज्जनों! मैं अपना लेख निर्विघ्न समाप्त होनेके लिये परमेश्वर को नमस्कार करता हुआ मंगला चरण समाप्त करता हूँ। और सारे श्रेष्ठ पुरुष भी ग्रन्थके आदिमें ऐसा ही करते आए हैं। इस वास्ते इसे श्रेष्ठ आचरण भी कहते हैं।

सुहृद् महाशयों! यह ईश्वरी महा माया कि जिससे सारी सृष्टि रची गई है सो कैसी अपार है। चाहे जिधर विचार करके देखिए किन्तु इसकी हद नहीं आ सकी। जैसे, बोली, चाली, सूरत, भाग आदि जो २ देखने में आता है सो सब नया ही नया प्रतीत होता है। अर्थात एक दूसरे से मिल ही नहीं सका किन्तु अनन्त है।

जैसे यह अनन्त है तैसे ही विद्या, इल्म, वा विचार भी अनन्त है; जो कोई पुरुष तन मन से उक्त बातों पर प्रयत्न करते हैं या करेंगे तो उनको कुछ न कुछ अवश्य मिले ही गा।

देखो हमारे पूज्य पूर्वज महर्षियोंने शुद्ध चित्त होकर विचार किया तो उनको अनेक विद्याओंका भंडार मिला जिस से अनेक शास्त्र रचे जो आज तक इस भूमंडल वाली बड़े मान्य के साथ पढ़ २ के अनेक विद्याओंका प्रादुर्भाव कर रहे हैं। जो कि आज कल यूरोप के वासियोंने उन्हीं ग्रन्थोंके अवलोकनसे बुद्धि की गौरवता पाकर रेल तार-विद्युद्विद्या और अनेकानेक शिल्पविद्या संबन्धी यन्त्रादि रचना कर रहे हैं। और जो २ महाशय इस विद्या में विचार करते रहेंगे उन २ को अवश्य नूतन विद्याकी प्राप्ती होवेगी। क्योंकि यह ईश्वरी माया अनन्त है इसका कभी थाह नहीं आ सकता। इस लिए मनुष्यको पुरुषार्थ हीन कभी न होना चाहिये और यह भी न समझना चाहिए कि जो कुछ इस समयमें विद्या प्रकट है जो

श्रीगणेशायनमः।

ईश्वर स्तुति।

दोहा।

विघ्न हरण मंगल करण, गौरी सुत गण राज।
ऋद्धि सिद्धि दे भक्तको, सिद्ध करो सब काज॥

सर्व शक्तिमान परमेश्वरको नमस्कार करता हूँ। कैसे हैं यह परमेश्वर कि जिसने अपनी अपार अर्थात् नहीं है जिसका पार ऐसी मायारूपी शक्ति से सारी सृष्टिको बनाई है और सारी सृष्टिकी उत्पत्ति वा स्थिति वा प्रलयका स्थान भी यही परमात्मा है। अर्थात् सारी सृष्टि इन्हीं माया विशिष्ट परमात्मा के अन्दर से निकलती है। और इन्हींके आश्रय स्थित रहती है। जब महा प्रलय होती है तो इन्हीं परमेश्वरमें सर्व नाम रूप जगत्लय हो जाया करता है। अर्थात् क्रम यानुसार इस जगतकी उत्पत्ति स्थिति वा लय बारंबार होती रहती है।

यह जगदीश सारे जगत्में व्यापक होने पर भी योगियोंके हृदय देशमें बसने वाला कहा जाता है। क्योंकि परमात्माकी उपलब्धि हृदय देशमें ही योगियोंको होती है। और योगके बिना इतर प्राकृत मनुष्योंको परमात्मा की प्राप्ती नहीं होती। जैसा ही श्रीमद्भागवतका के श्लोक, ध्यान से पाया जाता है। जो यह है—

यं ब्रह्मा वरुणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवैर्वेदैः
सांगपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः ध्यानावस्थित

भी इस शुभ समय पर अपने विचारका प्रकट करना उचित समझा अतएव इस पुस्तकको तैयार करके सज्जनोंकी भेट करनेका दृढ़ संकल्प कर लिया है। मैंने जोशमें आकर ऐसा संकल्प तो कर लिया, परन्तु इतनी योग्यताके लायक तो मैं हूं ही नहीं। क्योंकि व्याकरणादि से तो सर्वथा अनभिज्ञ हूँ केवल देवनागरी (...)रा की पुस्तकें देख सकता हूँ। और इस पुस्तकके बनाने में मेरा कै(सहायक भी नहीं है; इस लिये सर्व सज्जनों से सविनय प्रार्थना करता हूँ कि यदि व्याकरण सम्बन्धी या अन्य कोई अशुद्धता हो तो कृपया क्षमा कीजिए और इसकी भाषा पर अधिक ध्यान न देकर इसमें जो विचार भरा है उसे पढ़िये और अपनी सभ्यता से इसका आशय समझ लीजिए।

इस पुस्तक का विषय क्या है सो भूमिका में प्रकट करना चाहिये था। परन्तु किसी महाशयने मुझसे कहा कि जैसे वेदान्तआदि शास्त्रों के आद्यमें अनुबंध चतुष्टय हुआ करते हैं तैसे ही इस ग्रन्थ में भी अनुबन्ध होना चाहिये। क्योंकि अनुबन्धके जाने बिना विद्वानोंकी ग्रन्थमें प्रवृति नहीं होती। इस वास्ते इस पुस्तकका विषय ईश्वर स्तुति के पश्चात् अनुबन्ध के वरणन में बतलाया जायगा।

श्रीगणेशायनमः।

ईश्वर स्तुति।

दोहा।

विघ्न हरण मंगल करण, गौरी सुत गण राज।
ऋद्धि सिद्धि दे भक्तको, सिद्ध करो सब काज॥

सर्व शक्तिमान परमेश्वरको नमस्कार करता हूँ। कैसे हैं वह परमेश्वर कि जिसने अपनी अपार अर्थात् नहीं है जिसका पार ऐसी मायारूपी शक्ति से सारी सृष्टिको बनाई है और सारी सृष्टिकी उत्पत्ति वा स्थिति वा प्रलयका स्थान भी वही परमात्मा है। अर्थात् सारी सृष्टि इन्हीं माया विशिष्ट परमात्मा के अन्दर से निकलती है। और इन्हींके आश्रय स्थित रहती है। जब महा प्रलय होती है तो इन्हीं परमेश्वरमें सर्व नाम रूप जगत्लय हो जाया करता है। अर्थात् समयानुसार इस जगतकी उत्पत्ति स्थिति वा लय बारंबार होती रहती है।

यह जगदीश सारे जगत्में व्यापक होने पर भी योगियोंके हृदय देशमें बसने वाला कहा जाता है। क्योंकि परमात्माकी उपलब्धी हृदय देशमें ही योगियोंको होती है। और योगके बिना इतर प्राकृत मनुष्योंको परमात्मा की प्राप्ती नहीं होती। ऐसा ही श्रीमद्भगवद्गीता के व्यास, ध्यान से पाया जाता है। सो यह है—

यं ब्रह्मा वरुणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवैर्वेदैः
सांगपदक्रमोपनिषदैर्गायन्तियं सामगाः ध्यानावस्थित

भी इस शुभ समय पर अपने विचारका प्रकट करना उचित समझा अतएव इस पुस्तकको तैयार करके सज्जनोंकी भेट करनेका दृढ़ संकल्प कर लिया है। मैंने जोशमें आकर ऐसा संकल्प तो कर लिया, परन्तु इतनी योग्यताके लायक तो मैं हूं ही नहीं। क्योंकि व्याकरणादि से तो सर्वथा अनभिज्ञ हूं केवल देवनागरी भाषाकी पुस्तकें देख सकता हूं। और इस पुस्तकके बनाने में मेरा कोई सहायक भी नहीं है; इस लिये सर्व सज्जनों से सविनय प्रार्थना करता हूं कि यदि व्याकरण सम्बन्धी या अन्य कोई अशुद्धता हो तो कृपया क्षमा कीजिए और इसकी भाषा पर अधिक ध्यान न देकर इसमें जो विचार भरा है उसे पढ़िये और अपनी सभ्यता से इसका आशय समझ लीजिए।

इस पुस्तक का विषय क्या है सो भूमिका में प्रकट करना चाहिये था, परन्तु किसी महाशयने मुझसे कहा कि जैसे वेदान्तादि शास्त्रों के आदिमें अनुबंध चतुष्टय हुआ करते हैं तैसे ही इस ग्रन्थ में भी अनुबन्ध होना चाहिये। क्योंकि अनुबन्धके जाने बिना विद्यार्थीयोंकी ग्रन्थमें प्रवृति नहीं होती। इस वास्ते इस पुस्तकका विषय ईश्वर स्तुति के पश्चात् अनुबन्ध के प्रकरण में बतलाया जायगा।

श्रीगणेशायनमः ।

ईश्वर स्तुति ।

दोहा ।

विघ्न हरण मंगल करण, गौरी सुत गण राज ।
ऋद्धि सिद्धि दे भक्तको, सिद्ध करो सब काज ॥

सर्व शक्तिमान परमेश्वरको नमस्कार करता हूँ। कैसे हैं वह परमेश्वर कि जिसने अपनी अपार अर्थात् नहीं है जिसका पार ऐसी मायारूपी शक्ति से सारी सृष्टिको बनाई है और सारी सृष्टिकी उत्पत्ति वा स्थिति वा प्रलयका स्थान भी वही परमात्मा है। अर्थात् सारी सृष्टि इन्हीं माया विशिष्ट परमात्मा के अन्दर से निकलती है। और इन्हींके आश्रय स्थित रहती है। जब महा प्रलय होती है तो इन्हीं परमेश्वरमें सर्व नाम रूप जगत्लय हो जाया करता है। अर्थात् सम यानुसार इस जगतकी उत्पत्ति स्थिति वा लय वारंवार होती रहती है।

यह जगदीश सारे जगत्में व्यापक होने पर भी योगियोंके हृदय देशमें बसने वाला कहा जाता है। क्योंकि परमात्माकी उपलब्धी हृदय देशमें ही योगियोंको होती है। और योगके बिना इतर प्राकृत मनुष्योंको परमात्मा की प्राप्ति नहीं होती। वैसा ही श्रीमद्भागवतगीता के व्यास, ध्यान से पाया जाता है। सो यह है—

यं ब्रह्मा वरुणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवैर्वेदैः
सांगपदक्रमोपनिषदैर्गायंतियं सामगाः ध्यानावस्थित

भी इस शुभ समय पर अपने विचारका प्रकट करना उचित समझा अतएव इस पुस्तकको तैयार करके सज्जनोंकी भेंट करनेका दृढ़ संकल्प कर लिया है। मैंने जोशमें आकर ऐसा संकल्प तो कर लिया, परन्तु इतनी योग्यताके लायक तो मैं हूँ ही नहीं। क्योंकि व्याकरणादि से तो सर्वथा अनभिज्ञ हूँ केवल देवनागरी [illegible] की पुस्तकें देख सकता हूँ। और इस पुस्तकके बनाने में मेरा कोई सहायक भी नहीं है; इस लिये सर्व सज्जनों से सविनय प्रार्थना करता हूँ कि यदि व्याकरण सम्बन्धी या अन्य कोई अशुद्धता हो तो कृपया क्षमा कीजिए और इसकी भाषा पर अधिक ध्यान न देकर इसमें जो विचार भरा है उसे पढ़िये और अपनी सभ्यता से इसका आशय समझ लीजिए।

इस पुस्तक का विषय क्या है सो भूमिका में प्रकट करना चाहिये था। परन्तु किसी महाशयने मुझसे कहा कि जैसे वेदान्तआदि शास्त्रों के आदिमें अनुबंध चतुष्टय हुआ करते हैं तैसे ही इस ग्रन्थ में भी अनुबन्ध होना चाहिये। क्योंकि अनुबन्धके जाने बिना विद्यार्थीयोंकी ग्रन्थमें प्रवृति नहीं होती। इस वास्ते इस पुस्तकका विषय ईश्वर स्तुति के पश्चात् अनुबन्ध के बरनन में बतलाया जायगा।

श्रीगणेशायनमः।

ईश्वर स्तुति।

दोहा।

विघ्न हरण मंगल करण, गौरी सुत गण राज।
ऋद्धि सिद्धि दे भक्तको, सिद्ध करो सब काज॥

सर्व शक्तिमान परमेश्वरको नमस्कार करता हूँ। कैसे हैं वह परमेश्वर कि जिसने अपनी अपार अर्थात् नहीं है जिसका पार ऐसी मायारूपी शक्ति से सारी सृष्टिको बनाई है और सारी सृष्टिकी उत्पत्ति वा स्थिति वा प्रलयका स्थान भी वही परमात्मा है। अर्थात् सारी सृष्टि इन्हीं माया विशिष्ट परमात्मा के अन्दर से निकलती है। और इन्हींके आश्रय स्थित रहती है। जब महा प्रलय होती है तो इन्हीं परमेश्वरमें सर्व नाम रूप जगत्लय हो जाया करता है। अर्थात् समयानुसार इस जगतकी उत्पत्ति स्थिति वा लय बारंबार होती रहती है।

यह जगदीश सारे जगत्में व्यापक होने पर भी योगियोंके हृदय देशमें बसने वाला कहा जाता है। क्योंकि परमात्माकी उपलब्धी हृदय देशमें ही योगियोंको होती है। और योगके बिना इतर प्राकृत मनुष्योंको परमात्मा की प्राप्ती नहीं होती। जैसा ही श्रीमद्भगवद्गीता के ध्यान, श्लोक से पाया जाता है। सो यह है—

यं ब्रह्मा वरुणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवैर्वेदैः
सांगपदक्रमोपनिषदैर्गायंतियं सामगाः ध्यानावस्थित

भी इस शुभ समय पर अपने विचारका प्रकट करना उचित समझ अतएव इस पुस्तकको तैयार करके सज्जनोंकी भेट करनेका दृढ़ संकल्प कर लिया है। मैंने ओशमें आकर ऐसा संकल्प तो कर लिया, परन्तु इतनी योग्यताके लायक तो मैं हूँ ही नहीं। क्योंकि व्याकरणादि से तो सर्वथा अनभिज्ञ हूँ केवल देवनागरी ... की पुस्तकें देख सकता हूँ। और इस पुस्तकके बनाने में मेरा कोई सहायक भी नहीं है; इस लिये सर्व सज्जनों से सविनय प्रार्थना करता हूँ कि यदि व्याकरण सम्बन्धी या अन्य कोई अशुद्धता हो तो कृपया क्षमा कीजिए और इसकी भाषा पर अधिक ध्यान न देकर इसमें जो विचार भरा है उसे पढ़िये और अपनी सभ्यता से इसका आशय समझ लीजिए।

इस पुस्तक का विषय क्या है सो भूमिका में प्रकट करना चाहिये था, परन्तु किसी महाशयने मुझसे कहा कि जैसे वेदान्तआदि शास्त्रों के आदिमें अनुबंध चतुष्टय हुआ करते हैं तैसे ही इस ग्रन्थ में भी अनुबन्ध होना चाहिये। क्योंकि अनुबन्धके जाने बिना विद्यार्थियोंकी ग्रन्थमें प्रवृत्ति नहीं होती। इस वास्ते इस पुस्तकका विषय ईश्वर स्तुति के पश्चात् अनुबन्ध के बरणन में बतलाया जायगा।

श्रीगणेशायनमः।

ईश्वर स्तुति।

दोहा।

विघ्न हरण मंगल करण, गौरी सुत गण राज।
ऋद्धि सिद्धि दे भक्तको, सिद्ध करो सब काज॥

सर्व शक्तिमान परमेश्वरको नमस्कार करता हूँ। कैसे हैं यह परमेश्वर कि जिसने अपनी अपार अर्थात् नहीं है जिसका पार ऐसी मायारूपी शक्ति से सारी सृष्टिको बनाई है और सारी सृष्टिकी उत्पत्ति वा स्थिति वा प्रलयका स्थान भी यही परमात्मा है। अर्थात् सारी सृष्टि इन्हीं माया विशिष्ट परमात्मा के अन्दर से निकलती है। और इन्हींके आश्रय स्थित रहती है। जब महा प्रलय होती है तो इन्हीं परमेश्वरमें सर्व नाम रूप जगत्‌लय हो जाया करता है। अर्थात् समयानुसार इस जगतकी उत्पत्ति स्थिति वा लय बारंबार होती रहती है।

यह जगदीश सारे जगत्‌में व्यापक होने पर भी योगियोंके हृदय देशमें बसने वाला कहा जाता है। क्योंकि परमात्माकी उपलब्धी हृदय देशमें ही योगियोंको होती है। और योगके बिना इतर प्राकृत मनुष्योंको परमात्मा की प्राप्ती नहीं होती। ऐसा ही श्री.महाभागवत के व्यास, भगवान से माना जाता है। सो यह है—

यं ब्रह्मा वरुणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवैर्वेदैः
सांगपदक्रमोपनिषदैर्गायंतियं सामगाः ध्यानावस्थित

भी इस शुभ समय पर अपने विचारका प्रकट करना उचित सम
अतएव इस पुस्तकको तैयार करके सज्जनोंको भेट करनेका दृढ़ संक
कर लिया है। मैंने जोशमें आकर ऐसा संकल्प तो कर लिया, पर
इसकी योग्यताके लायक तो मैं हूं ही नहीं। क्योंकि व्याकरणादि से
सर्वथा अनभिज्ञ हूं केवल देवनागरी [illegible] की पुस्तकें देख सकता
और इस पुस्तकके बनाने में मेरा कोई सहायक भी नहीं है; ।
लिये सर्व सज्जनों से सविनय प्रार्थना करता हूं कि यदि व्याक
सम्बन्धी या अन्य कोई अशुद्धता हो तो कृपया क्षमा कीजिए औ
इसकी भाषा पर अधिक ध्यान न देकर इसमें जो विचार भरा है उ
पढ़िये और अपनी सभ्यता से इसका आशय समझ लीजिए।

इस पुस्तक का विषय क्या है सो भूमिका में प्रकट करना चाहि
था, परन्तु किसी महाशयने मुझसे कहा कि जैसे वेदान्तआ
शास्त्रों के आदमें अनुबंध चतुष्टय हुआ करते हैं तैसे ही इ
ग्रन्थ में भी अनुबन्ध होना चाहिये। क्योंकि अनुबन्धके जाने बि
विद्वानोंकी ग्रन्थमें प्रवृति नहीं होती। इस वास्ते इस पुस्तकका विष
ईश्वर स्तुति के पश्चात् अनुबन्ध के वरणन में बतलाया जायगा।

उससे अधिक भय नहीं है। किन्तु मनुष्यको सदैव ऐसा समझना चाहिए कि इस जगत् में अनन्त पदार्थ गुप्त रीति से विद्यमान हैं। जैसे जैसे मनुष्य विद्या और पुरुषार्थ करेगा वैसाही वैसा फल पाता जायगा। इसी बात पर नीति वालों का यह सिद्धान्त ठीक घटता है। जैसे विदुरजी ने कहा है—

सुवर्ण पुष्पां पृथिवीं चिन्वन्ति पुरुषास्त्रयः
शूरश्च कृतविद्यश्च यश्च जानाति सेवितुम् ॥१॥

अर्थः—इसका तात्पर्य यह है कि यह पृथ्वी सुवर्ण से पुष्पित है परन्तु इन पुष्पोंको तीन ही पुरुष पा सकते हैं। एक तो शूरवीर दूसरा विद्वान् तीसरा जो इस को सेवन करना जानता है। इससे भी यही प्रतीत होता है कि अनेक प्रकार के पदार्थ इस भूमि में गुप्त हैं; जहाँ तक निकल सकते हों निकाल लेना चाहिए। इस से मनुष्यको दो लाभ होते हैं एक तो आप सुखका भागी बनता है और दूसरे चिरकाल पर्यन्त मरने के बाद भी विख्यात रहता है।

अथ अनुबंध चतुष्टय वरणन :—

अधिकारी अर्थात् इस पुस्तकके श्रवण का अधिकारी कौन है; विषय, अर्थात् यह पुस्तक कौनसी बातोंको वर्णन करती है। संबंध, अर्थात् इस पुस्तकका किस २ के साथ क्या २ संबंध है। प्रयोजन, अर्थात् इस पुस्तक का प्रयोजन क्या है। इन चारोंके संगठित होनेको अनुबन्ध कहते हैं।

अथ अधिकारी वरणन :—

जिस पुरुषको इस पुस्तकके श्रवण द्वारा पूर्णानन्द की प्राप्ती होवेगी वही पुरुष इस पुस्तकका अधिकारी होगा। जैसे कि मल विक्षेप रहित विवेकादि चार साधनों करके सम्पन्न मुमुक्षु अर्थात्

तद्गतेन मनसा पश्यंति यं योगिनो यस्यांत न विदुः
सुरासुरगणा देवाय तस्मैनमः।

प्रिय सज्जनों! मैं अपना लेख निर्विघ्न समाप्त होनेके लिये परमेश्वर को नमस्कार करता हुआ मंगला चरण समाप्त करता हूं। और सारे श्रेष्ठ पुरुष भी ग्रन्थके आदिमें ऐसा ही करते आए हैं। इस वास्ते इसे श्रेष्ठ आचरण भी कहते हैं।

सुहृद् महाशयों! यह ईश्वरी महा माया कि जिससे सारी सृष्टि रची गई है सो कैसी अपार है। चाहे जिधर विचार करके देखिए किन्तु इसकी हद नहीं आ सकी। जैसे, बोली, चाली, सूरत, भाग आदि जो २ देखने में आता है सो सब नया ही नया प्रतीत होता है। अर्थात् एक दूसरे से मिल ही नहीं सका किन्तु अनन्त है।

जैसे यह अनन्त है तैसे ही विद्या, इल्म, वा विचार भी अनन्त है; जो कोई पुरुष तन मन से इन बातों पर प्रयत्न करते हैं या करेंगे तो उनको कुछ न कुछ अवश्य मिले ही गा।

देखो हमारे पूज्य पूर्वज महर्षियोंने शुद्ध चित्त होकर विचार किया तो उनको अनेक विद्याओंका भंडार मिला जिस से अनेक शास्त्र रचे जो आज तक इस भूमंडल वासी बड़े मान्य के साथ पढ़ २ के अनेक विद्याओंका प्रादुर्भाव कर रहे हैं। जो कि आज कल यूरोप के वासियोंने उन्हीं ग्रन्थोंके अवलोकनसे बुद्धि की गौरवता पाकर रेल तार-विद्युद्विद्या और अनेकानेक शिल्पविद्या संबन्धी यन्त्रादि रचना कर रहे हैं। और जो २ महाशय इस विद्या में विचार करते रहेंगे उन २ को अवश्य नूतन विद्याकी प्राप्ती होवेगी। क्योंकि यह ईश्वरी माया अनन्त है इसका कभी थाह नहीं आ सकता। इस लिए मनुष्यको पुरुषार्थ हीन कभी न होना चाहिये और यह भी न समझना चाहिए कि जो कुछ इस समयमें विद्या प्रकट है या जो पदार्थ प्राप्त हो चुके हैं

क्योंकि सर्व प्राणी सदाँ यही चाहते हैं कि हमारा शरीर सर्वथा उपस्थित रहै। जिसका कारण यह है कि सर्व को अपना ही शरीर अच्छा वा प्रिय लगता है इसी प्रकार से सबको कन्तानादिक भी अपने ही अच्छे वा प्रिय लगते हैं। औरों के पुत्र सुन्दर वा सुशिक्षित भी क्यों न हों परन्तु वैसा प्रिय नहीं लगता जैसा कि कुरूप और शिक्षाहीन होने पर भी अपना पुत्र। वैसे ही अन्यों का विशाल महल भी अपनी टूटी फूटी झोपड़ी जैसा प्रिय नहीं लगता। तात्पर्य यह है कि सब को स्वाभाविक अपनी ही अपनी वस्तु प्रिय लगती है। यहाँ तक कि अपने मलमूत्रादिकनमें भी इतनी ग्लानी नहीं आती जितनी कि औरोंकेमें। यह बात सबों के अनुभव सिद्ध है। और सब लोग ईश्वर से यही प्रार्थना करते हैं कि हमारे कुटुम्बी या इष्ट मित्रों से हमारा कभी वियोग न होवे। किन्तु हमेशा संयोग ही बना रहै जैसे कि इस समय में है।

मा भूयम् नभूया समितिः।

इत्यादि शास्त्रों के वचनों से भी यही पाया जाता है कि तमाम जीव ईश्वर से सदा ही प्रार्थना करते हैं। इस प्रार्थना से यह भी सिद्ध होता है कि सर्व प्राणी अर्थात् प्राणधारी जीव अपनी २ मौत से डरते हैं। और यह पुस्तक सर्व जीवों के अनुकूल धारणा को सिद्ध करता हुआ कहता है कि इस सृष्टि के अंत पर्यंत किसी का भी किसी सज्जन के साथ अत्यन्त वियोग कदापि नहीं होवेगा इसी कारण से यह पुस्तक सब के उपकार का हेतु है।

अथ प्रयोजन वर्णनः—

शोक और भय यही सब प्राणियों के दुःख के हेतु हैं। इस लिये अधिकारियों को वर्तमान समय में ही शोक रहित निर्भय अभ्यन्तरी मार्गों का बताना ही इस ग्रन्थ का प्रयोजन है। जो शोक रहित

ही वेदान्त शास्त्र के श्रवण से पूर्णानन्द की प्राप्ती होती है अन्यको नहीं। तैसे ही सुक्ष्म, वा तीव्र बुद्धी वाले सज्जन पुरुष ही इस पुस्तक के भावार्थको समझ करके आनन्दको प्राप्त होवेंगे। अन्य नहीं। क्यों कि तीव्र बुद्धी के बिना कोई २ बात समझ में नहीं आती इस लिए पूर्णानन्द की प्राप्ती भी नहीं होती। इस वास्ते सज्जनों को चाहिए कि किसी विद्वान् से इस पुस्तकको श्रवण करें। जिससे कि सारी पुस्तक समझ करके पूर्णानन्द को प्राप्त हो। और पर-छिद्र गिवेशणी दुर्जन भी इसके अधिकारी नहीं हैं। क्यों कि सारग्राहिता रहित होने वा कुतर्क कि उत्पत्ति होने करके इस के आनन्द से वंचित ही रहेगा। इस वास्ते बुद्धीमान सज्जन ही इस पुस्तकके श्रवणके अधिकारी होवेंगे।

अथ विषय वरणन :—

जिस पुस्तक से जो बात सिद्ध की जाती है वही उस पुस्तकका विषय होता है। जैसे वेदान्त शास्त्र में जीव ब्रह्म की एकताका ही विशेष करके वरणन है। इस लिये जीव ब्रह्मकी एकता ही वेदान्त का विषय है। तैसे ही इस पुस्तक में सांगी नाटक अर्थात् एक कल्प तक शरीर वा भोगादि सांगी का सांगी मिलना सिद्ध किया जाता है इस लिये इस पुस्तकका सांगी नाटक ही विषय है।

अथ संबंध वरणन:—

अधिकारी का और फल का प्राप्य प्रापक भाव सम्बन्ध है। फल प्राप्य है और अधिकारी प्रापक है। जो वस्तु प्राप्त होवे सो प्राप्य कहाती है और जिसको प्राप्त होवे सो प्रापक
तैसे ही उपकार प्राप्य है और अधिकारी प्रापक है इस
होता है कि यह पुस्तक अधिकारियोंके

अर्थः— जिस किसी प्रकार करके विद्वान् हर एक देहधारी जीवको प्रसन्न करे क्योंकि इनको प्रसन्न करना ही भगवान्का पूजन है और गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने भी रामायण में सारी जगत्को ही परमात्मा का स्वरूप कहा है।

सिया राम मय सब जग जानी।
करहु प्रणाम सप्रेम सुबानी॥

अर्थः—सारी जगत् को सिया राम अर्थात् परमात्मा का स्वरूप जान कर शुभ बाणी से प्रेम सहित इन सब देह धारियों को प्रणाम करे और भगवद्गीता में भी सारी जगत् कूं परमात्मा का स्वरूप जानने वाले कूं श्रेष्ठ महात्मा कहा है।

वासुदेव सर्व मिती स महात्मा सुदुर्लभः।

अर्थः—इस सारे जगत को वासुदेव स्वरूप जानने वाले महात्मा जन थोड़े ही हैं। इन वचनों से यहभी सिद्ध होता है कि सारा जगत् परमात्मा का ही रूप है। इस लिये सर्व सज्जनोंको चाहिये कि यथाशक्ति हो सके सर्व प्राणियोंके साथ प्रियाचरण करे। और मैं भी प्राणियों की प्रसन्नता को ही परमात्मा की प्रसन्नता मानता हुआ इस ग्रन्थ रचना में प्रवृत्त हुआ हूं। जो कि सब प्राणियों के अनुकूल होने से प्रसन्नताका हेतु है। और अपने पर परमेश्वर की प्रसन्नता का होना ही परम प्रयोजन है।

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः

निरभय आनंद कि प्राप्ती इस प्रकार से होती है शोक यही समझ हुआ करता है जब कि, अपनी प्राप्त हुई प्रिय वस्तु का अत्यन्त वियोग हो अर्थात् भ्रांती करके यही निश्चय हो जावे कि अब इस वियोग पाना वस्तु का कभी संयोग न होगा। परन्तु इस पुस्तक के देखने से अधिकारियोंकी यह भ्रान्ती नष्ट हो कर ऐसा निश्चय हो जायगा कि बिछड़े हुए सज्जनादि कालान्तर में फिर भी मिल जायँगे। इसी लिये तो विद्वानों को किसी वस्तु के वियोग होने से दारुण शोक कदापि नहीं होता ; और भय का छूटना इस प्रकार समझिये।

यह भय सब मनुष्योंको हमेशा बना रहता है कि इस शरीर के छूटने पर न मालूम हमको उन उत्तर जन्ममें पशु पक्षिआदि कौन २ सी योनि भोगनी पड़ैंगी या क्या २ सुखःदुख देखने पड़ैंगे। बस यही तो एक बड़ा भारी भय है परन्तु इस पुस्तक के देखने से यह भी अविद्या जनितभय नष्ट होकर ऐसा निश्चय हो जायगा कि हम लोगोंके उत्तर जन्म में भी इसी जन्म के सदृश इसी शरीरको पा कर इन्हीं अपने इष्ट मित्र वा कुटुम्बियोंके साथ आनन्द पूर्वक रहेंगे। जब ऐसा निश्चय होगा तो भय का लेश भी नहीं रहेगा।

जब शोक और भय ये दोनों नष्ट हुए जब एक तो आनंदकी प्राप्ती स्वाभाविक ही हो सकती है। दूसरे बहुत अद्भुत अगाध रहस्यों के समझनेमें आजाने से भी आनन्दकी प्राप्ती हुआ करती है। बस यही इसके पढ़ने सुननेका प्रयोजन है। और सब सज्जनों के प्रति मनुष्यत्वाचरण करके उनको प्रसन्न करना ही ग्रन्थ कर्ता का प्रयोजन है। क्योंकि प्राणियों को प्रसन्न करना ही शास्त्रों में भगवान का पूजन कहा है क्यों कि सारा जगत परमात्माका ही स्वरूप होने से

येन केन प्रकारेण यस्य कस्यापि देहिनः ।
सन्तोषं जनयेत्प्राज्ञ तदेवेश्वर पूजनम् ॥

इस उत्सवके जिक्र चलाने का तात्पर्य यह है कि इसी उत्सव के कारण से यह पुस्तक लिखी गई है। पाठक गणों! अब जिस विषय पर यह पुस्तक बनाई गई है उसके सुनने के लिये आप बहुत उत्सुक होंगे। अब ध्यान देकर पढ़िये यहां उपरोक्त कुछ मनुष्य जो कि भोजनादि से निवृत हो कर एकान्त स्थान में बैठे इसी जुबली महोत्सव की चर्चा कर रहे थे। क्योंकि यह स्वाभाविक है कि जो घटना नूतन होती है उसी की प्रायः मनुष्य चर्चा किया करते हैं। इस लिए यह मनुष्य आपसमें वार्तालाप कर रहे थे और बारम्बार कहते थे कि जैसा जुबिली महोत्सव महाराजा गंगासिंहजी के राज्य में अब हुआ है, वैसा पहिले कभी नहीं हुआ था। अर्थात् यह उत्सव बिलकुल ही नूतन है। धन्य है इन महाराजाको कि जिन्होंने जंगल में मंगल कर दिखाया। यह इन्हीं महाराजा की कृपा है कि अभी तक इतना हर्ष शहर में मनाया जा रहा है। बस वे लोग इस प्रकार से वार्तालाप करही रहे थे कि उसी अवसर में गणित वेदान्तादि विषयमें निपुण एक सुयोग्य महात्मा किसी निमित्त से वहां आ निकले जब महात्माने उन लोगों से सुना कि जुबिली महोत्सव जो इन दिनों यहां हुआ है अपूर्व है तब वो महात्मा हंसकर कहने लगे सज्जनों! संसारमें यावत् मात्र वस्तु और दृश्य पदार्थ हैं उनमें ऐसी कोई वस्तु, वा बातें नहीं है जो पहिले नहीं हुई थी और भविष्यतमें न होवेगी; इस पर उन सभ्य गणोंने आश्चर्य में होकर महात्मा से इस प्रकार पूछा।

प्रश्न—महाराज! क्या यह जुबिली महोत्सव नया नहीं है? पहिले कभी यहां (बीकानेर में) हुआ था? और भविष्यतमें भी क्या कभी होगा?

अद्भुत विचार।

प्रथम भाग प्रारंभ।

सांयकाल के करीब ७ बजे थे। ठंडी हवा चल रही थी, कृष्णपक्ष के होने से समय कुछ भयानकसा मालूम होता था। ठंडके मारे बाहर निकलना दुःसाध्य था। थोड़ी देरके पश्चात जब शान्ति देवी ने आकर पदार्पण किया। ऐसे समय में कुछ मनुष्य जो कि ठंड के भय से बाहर निकलने का साहस न करके एक स्थान में जो कि ढका हुआ होने के कारण से गर्म था बैठे हुए थे। उस दिन से कुछ दिन पहिले शूरवीर शिरोमणि तेजस्वी न्यायी और उदारादि अनेक प्रकारके असंख्य गुण सम्पन्न क्षत्रिय धर्मावलम्बी महाराजाधिराज नरेन्द्र शिरोमणि श्रीबीकानेर नरेश, कर्नलसर श्री १०८ श्री श्री गंगासिहजी साहब बहादुर जी० सी० एस० आई० श्री जंगलधर बादशाह के पचीस वर्ष सुख और शान्ति पूर्वक न्याय युक्त राज्य शासन के समाप्त होने पर शहर बीकानेर राज्य की तरफ से सन १९१२ ई० में श्री जुबिली महोत्सव मनाया गया था। जिसमें देश देशान्तरों के महाराजाधिराज या, वाइसराय महोदय भी पधारे थे और सब राज्य भक्त सेठ, साहूकार तथा अन्य सज्जनोंने भी इस उत्सव में भाग लिया था, और बड़ी प्रीति पूर्वक बहुत से एड्रेस (अभिनन्दनपत्र) प्रजा की तरफ से महाराजाको दिए गये थे। महाराजाने भी एक सवारी बड़ी धूमधाम के साथ श्रीलक्ष्मीनारायणजी के दर्शनार्थ निकाली थी। इसके पश्चात् बहुत सी सभायें एकत्र हुई जिनमें सब प्रजा गणों ने इस उत्सव पर अपना हर्ष प्रकट किया

प्रश्न—महाराज ! क्या बीता हुआ समय फिर भी आजाया करता है। यह जो आपने कहा सो तो आश्चर्यसा मालूम होता है।

उत्तर—नहीं २ ऐसा मत कहो विते हुए समयका फिर लौट कर आने में कोई आश्चर्य नहीं है। क्योंकि इस संसारको विद्वानोंने चक्र की उपमा दी है। और यह संसार चक्र, काल चक्र के आश्रित हो कर घूमता रहता है। जैसे कि चाक का घूमना देखने वाला चाकके जिस २ भागको देख लेता है। फिरउसी भागको घूम कर आयहुए को कई बार देख सकता है। इसी प्रकार इस संसार चक्र में भी जो २ बातें देखने सुनने और अनुभव में आती है सो भी उसी प्रकार भविष्यत् में भी देखने सुनने और भोगने में अवश्य आवेंगी और भूतकाल में भी देखने सुनने और भोगने में आई थीं। जरा विचार कर के देखिये कि जब कालको चक्रकी उपमा दी गई तो वर्तमान काल ही भूतकाल होवेगा। भविष्यत् काल वर्तमान काल होवेगा। और भूतकाल भविष्यत् काल होवेगा। जैसे मध्यान के समय प्रातः काल को भूतकाल कहते हैं और मध्यान्ह को वर्तमान काल और सायंकालको भविष्यत् काल कहते हैं। फिर जब सायंकाल आता है तब उस मध्यान्ह काल जिसको कि हम वर्तमान काल कहते थे, अब भूतकाल कहने लगते हैं। और वही सायंकाल कि जिसको हम पहिले भविष्यत् काल कहते थे अब वर्तमान कालकहते हैं। इसी तरह प्रात कालकी उस वक्त भूत कालमें गणना थी अब प्रातः काल इस समय भविष्यत् काल समझा जा रहा है। जैसे ऋतु मास दिन इत्यादि बीते हुए फिर लौट कर आ जाते हैं वैसे ही बीता हुआ समय फिर आने में कोई आश्चर्य नहीं है।

प्रश्न—महाराज ! जबकी महोत्सवादि को बात और जो पदार्थ देखने सुनने वा भोगनेमें आते हैं सो नये नहीं हैं। किन्तु पहिले

उत्तर—हाँ, यह नया नहीं है पहिले कई बार हो चुका है और भविष्यत् में भी फिर वारम्वार होता रहेगा।

प्रश्न—महाराज! आपने यह कैसे जाना कि कोई भी बात नवीन नहीं है और जो कुछ अनुभव करते हो वो पहिले भी हो चुका था?

उत्तर—प्रियजनों! जिस प्रकार मैंने इस विषयको निश्चय किया है आप लोगोंके सामने सविसतार कहता हूँ। ज़रा ध्यान दे कर सुनिए।

एक दिन का जिकर है कि मैं प्रातः काल की नित्य क्रिया से छुट्टी पाकर शुद्ध चित्त से परमात्माका चिन्तन कर रहा था कुछ देर के बाद जब मेरा चित परमात्माके ध्यान से उथित हुवा तो उस समय सत्वगुण की बहुल्यता के प्रभाव से मुझको ऐसा प्रतीत होने लगा कि मैं इस समय इस शरीर करके स्थित हूँ वैसे ही पूर्व जन्म में भी ऐसे ही शरीर से स्थित था। अर्थात पूर्व जन्म वाला ही यह सांगी शरीर है बस उसी समय से मैं इस फिकर में पड़गया कि यह मेरा अनुभव वास्तव में सत्व है या क्या। फिर इस बात के सत्यासत्यके निश्चय के लिये तन, मन से खोज करने लगा। तो मेरे अनुभवके सत्य होने में कुछ २ शास्त्रों के प्रमाण भी मिले जिसको इसी पुस्तक के उतरार्द्धके अंतमें बतलाया जायगा।

अहा? उस समय मुझको बड़ाही आनंद प्राप्त हुवा। फिर शास्त्रों के प्रमाणों वा गणित करके और अपने अनुभव के विचार द्वारा मुझको यह दृढ़ निश्चय होगया कि एक कल्प तक के समय में केवल मैं ही नहीं किन्तु सर्व लोग चौरासी (८४०००००) लाख वार इसी शरीरको बदलते हुए ऐसा का ऐसा मानों सांगी ही शरीरको धारण करके, इसी तरह भ्रमण कर चुके हैं और करते रहेंगे। जैसा कि इस समय वर्त्तमानमें कर रहे हैं।

इस हिसाब से जब अर्द्ध कल्प अर्थात सृष्टि काल में जो कि महाराज का दिन है एक हजार १००० चौकड़ी व्यतीत होने से मनुष्योंके चार अर्व बत्तीस करोड़ ४३२००००००० वर्ष होवेंगे। और पूरे कल्प में इससे द्विगुण अर्थात् २००० दो हजार चौकड़ी के आठ अर्व चौसठ किरोड़ ८६४००००००० वर्ष होवेंगे। ऐसे तीन सौ साठ ३६० कल्प व्यतीत होने से महाराज का एक वर्ष होता है। और ऐसे सौ वर्ष की महाराज ब्रह्माजी की आयु होती है। ऐसा मनुआदि शास्त्रों में स्पष्ट लिखा है।

पाठक गणों जब महारात्रि के, अन्त में महाराज ब्रह्माजी योग निद्रासे उठ कर सृष्टिकी रचना आरंभ करते हैं तो पहिले सूर्य, चन्द्रमा और पृथ्व्यादि पदार्थोंको उत्पन्न करते हैं। जो कि मनुष्यों की स्थितिका कारण है। फिर अन्नादि पदार्थों को रच कर मनुष्या-दिकन की सृष्टि रचते हैं। तो इनके बनाने अर्थात रचना अवस्था में बारह करोड़ १२००००००० वर्ष लग कर शेष चार अर्व बीस करोड़ वर्ष ४२०००००००० रहते हैं। बस इतने वर्षोंमे जो कुछ दुख सुखादि भोगने में आता है उसी को नाम प्रारब्ध कर्मका फल भोगना समझिए। कर्म तीन प्रकार के होते हैं; जैसे संचित प्रारब्ध, और आगामी इनका विस्तार पूर्वक वर्णन फिर किया जायगा इन चार अर्व बीस करोड़ वर्षोंमे चौरासी लाख ८४००००० बार मनुष्यादि का जन्म होता है जो पहिले शरीरके सदृश ही दूसर शरीर होता है अर्थात पहिले जैसा ही शरीर होता है ऐसा नहीं कि मनुष्य इतर जन्म में पशु पक्षी आदिक होवे। और पशु पक्षी आदि मनुष्य का शरीर धारण करें; क्योंकि जीव का जो सूक्ष्म शरीर है वो एक कल्प तक नहीं बदलता इसी कारण से [illegible]

उत्तर—हाँ, यह नया नहीं है पहिले कई बार हो चुका है और भविष्यत् में भी फिर वारम्वार होता रहेगा।

प्रश्न—महाराज! आपने यह कैसे जाना कि कोई भी बात नवीन नहीं है और जो कुछ अनुभव करते हो वो पहिले भी हो चुका था?

उत्तर—प्रियजनो! जिस प्रकार मैंने इस विषयको निश्चय किया है आप लोगोंके सामने सविस्तार कहता हूँ। जरा ध्यान दे कर, सुनिए।

एक दिन का जिकर है कि मैं प्रातः काल की नित्य क्रिया से छुट्टी पाकर शुद्ध चित्त से परमात्माका चिन्तन कर रहा था कुछ देर के बाद जब मेरा चित्त परमात्माके ध्यान से कम्पित हुआ तो उस समय सत्वगुण की बहुलता के प्रभाव से मुझको ऐसा प्रतीत होने लगा कि मैं इस समय इस शरीर करके स्थित हूँ वैसे ही पूर्व जन्म में भी ऐसे ही शरीर से स्थित था। अर्थात् पूर्व जन्म वाला ही यह सांगो शरीर है बस उसी समय से मैं इस फिकर में पड़गया कि यह मेरा अनुभव वास्तव में सत्य है या क्या। फिर इस बात के सत्यासत्यके निश्चय के लिये तन, मन से खोज करने लगा। तो मेरे अनुभवके

और सारी पृथिवियाँ के सहित माया विशिष्ट परमात्मामें लय हो जाया करती है। उस समय किसी जीवको कुछ भी सुख दुखादि भोग नहीं मिलते। सर्व जीव उस समय गाढ़ निद्रामें सोये हुए की तरह रहते है। जिसका कारण यह है कि उस समय किसी जीवके कर्म भी अपने सुख दुखादि फल देने के सन्मुख नहीं होते। इस वास्ते महा प्रलय के होनेमें किसी प्रकार की बाधा भी नहीं पड़ती और कर्मोंके फल न देनेका कारण आगे कहा जायगा।

भी अनुभवमें आचुके हैं। और आगे भी इसी तरह आते रहेंगे। ऐसा जो आपने कहा सो हम लोगोंकी समझमें नहीं आता इसलिये इसी बातको कृपा करके आप फिर विस्तार पूर्वक कहिये जिससे हम समझ सकें और यह भी बतलाइये कि नगर बीकानेरमें जयन्ती महोत्सव पहिले कब और कौनसे महाराजाके राज्यमें हुआ था और आगामी कब और कौनसे महाराजाके राज्यमें होवेगा। क्योंकि राव बीकेजी से लेकर वर्तमान महाराज तक कुल इक्कीस २१ नरेश आजतक बीकानेरमें हुए हैं। जिनों कि कविता इस प्रकार है।

बीको, नेरो, लूणसी, जैतो कल्लो, राय, दलपत,
सूरो, करणसि, अनोप, सरूप, सुजाय, जोरो, गज्जो,
राजसी, परतापो, सूरत, रतनसिंह, सिरदार सिंह,
डूँग, गंग, महिपत।

महाराज! इन सब नरेशोंकी बहादुरी या कर्तव्यादि आद्योपान्त ख्यात बीकानेर में मौजूद है। परन्तु पहिले कभी किसी महाराज के समयमें श्रीजयंती महोत्सवका होना तो कहीं नहीं लिखा? फिर आप किस प्रकार कहते हैं कि नगर बीकानेर में श्रीजयन्ती महोत्सव पहिले भी हुआ था।

उत्तर—जी हाँ, यह आपका कहना ठीक है क्योंकि ये जो मैंने कहा सो बिलकुल नईसी बात है इस लिए आप लोगोंके ध्यान में अवश्य न जमी होगी। अब मैं इसी बात को आपकी बुद्धीमें आनेके लिए विस्तार पुर्वक कहता हूँ। आप भी एकाग्र चित्त हो कर सुनिये जिससे कि शीघ्रही समझमें आजाय।

श्रीब्रह्माजी महाराजके एक दिन रातको कल्प कहते हैं। उनके दिन और रात्रि बराबर होते हैं। रात्रिमें सारी सृष्टि सूर्य्य, चन्द्रमा

अद्भुत विचार ।

एक चौकड़ी का नकशा ।

	युग नाम	सत्य युगः	सत्य संधिः	त्रेता युगः	त्रेता संधिः	द्वापर युगः	द्वापर संधिः	कलिः युगः	कलिः संधिः	जोड़ चारों युगों के संधि सहित देवताओंक
१										
२	देवोंका	४०००	८००	३०००	६००	२०००	४००	१०००	२००	
३	जोड़	४८००		३६००		२४००		१२००		१२०००
४	मानुष	१४४००००	२८८०००	१०८००००	२१६०००	७२००००	१४४०००	३६००००	७२०००	मानुषी
५	जोड़	१७२८०००		१२९६०००		८६४०००		४३२०००		४३२००००

इति

श्लोक—

वासांसि जीर्णानि यथा विहायनवानि
गृह्णाति नरोऽपराणि ॥
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि
संयाति नवानिदेही ॥

कदाचित् कोई कहे कि इस श्लोक से यह तो सिद्ध नहीं होता कि जीवात्मा पुराने मनुष्य शरीर को छोड़ कर फिर मनुष्यका ही शरीर धारण करता है। किन्तु शरीर मात्रका ही धारण करना इस श्लोक से तो पाया जाता है। इससे तो यह भी हो सकता है कि मनुष्य देहको छोड़ कर पश्वादिकका देह भी धारण कर सकता है।

केवल मनुष्य का मनुष्य ही होना यह तो सिद्ध नहीं होता। इसका उत्तर सुनिए, जैसे धोती पहरनेवाला पुरानी धोतीको छोड़ कर बदलेमें नवीन धोती ही धारण करता है। किन्तु उसकी जगह पगड़ी धारण नहीं करता। और पगड़ी त्यागने वाला पगड़ी की जगह पगड़ी ही धारण करता है न कि पगड़ी की जगह धोती। इसी प्रकार सृष्टि काल पर्यन्त जो २ जीव जैसा २ शरीर छोड़ेगा, उसके बदले वैसा ही वैसा शरीर धारण करेगा। यहां इस श्लोक के सर्वथा आशय कर्तोंके दृष्टान्त से बताया जाता है। इस से यही सिद्ध होता है कि मनुष्यादि कल्पके आदि में जो शरीर धारण करते रहते हैं अर्थात् सृष्टि के आयोजन रूप में मनुष्यादि रूप ही नाटक बारम्बार दिखलाते रहते हैं।

जैसे विशेषकर मनुष्यने महाराज हरिश्चन्द्र के नाटकमें बदले

शरीर यहाँ तक होता है। किवर्ण आश्रम, जाति कुटम्ब, नाम, ग्राम, देश, काल, मकान, माता, पिता, भगिनी, भ्राता, मित्र, भार्या, पुत्र, पौत्र, विद्या, आयु, रोग, भोग, स्वामी, सेवक, बुरा, भला, धन, भूख, सम्पत, विपति, संयोग, वियोग, जय, पराजय, और पशु आदि जो कुछ सुख, दुखके हेतु हैं सो सर्व इस वक्त अनुभव करते हो उनको ऐसा समझो कि यह सब पदार्थ इस कल्प के आदि के शरीर से लेकर आज तक हमको सब शरीरमें वारम्वार मिलते आए हैं। और इस कल्प के अन्तिम शरीर तक यही उपरोक्त सब पदार्थ वारम्वार प्राप्त होते रहेंगे। अर्थात् इन चौरासी लाख जन्मों में एक से ही सब भोग होते हैं। न्यूनाधिक किञ्चित मात्र भी नहीं होता है।

जोन से पुरुष किसी पूर्व कल्प के किये हुए पुण्यों से स्वर्गके सुखोंको भोग कर शेष रहे पुण्यों से कल्प के आदिमें उत्तम देश उत्तम काल में उत्तम जातिमें महाराजाधिराज अथवा धनाढ्य पण्डित ईश्वर भक्त वा स्वधर्मानुष्ठानी वा सद्गुण विशिष्ट जिज्ञासु, आदि उत्तम पुरुष होते हैं। वे चौरासी लाख जन्म पर्यन्त वैसे ही वैसे होते हैं। और जो पुरुष पूर्वके किये हुए पापों से नर्क के दुखोंको भोगते हुए कई कल्पों तक तिर्यगादी योनियों को पाकर पापोंको क्षीण करते हुए शेष पापसे अंग हीन, धनहीन, बुद्धि हीन, वा रोगी होकर दुखोंको भोगते हुए सब जन्मोंको बितावेंगे। इस से यह सिद्ध होता है कि जन्म तो एक ही है जो कल्प के आदिमें हुआ था। बाकी एक क्रम चौरासी लाख वार तो केवल शरीर ही बदला जाताहै। जिस तरह मनुष्य पुराने वस्त्रको डाल कर नवीन वस्त्र धारण करते हैं वैसे ही जीवात्मा जीर्ण देह को त्याग कर फिर नवीन देह को धारण करता है। ऐसा ही तो श्रीमद्भगवद्गीतामें भी कहा है।

महोत्सव पाँच सौ वर्ष पहिले इन्हीं महाराजाधिराजने नगर बिकानेर में किया था अब कर रहे हैं और पाँच सौ वर्ष पश्चात् फिर भी करेंगे अर्थात् इस कल्प भर में यही महाराजा इसी महोत्सवको चौरासी लाख बार करेंगे। क्यों कि इस महोत्सव की जिम्मेवारी परमात्माने इन्हीं महाराजा को दी है।

जब महात्माने कहा कि पाँचसौ वर्ष पहिले इन्हीं महाराजाने यह उत्सव किया था तब तो श्रोतागणोंने अत्यन्त आश्चर्य में आकर इस प्रकार वक्ष्यमाण प्रश्न करना आरंभ किया।

प्रश्नः—महाराज पाँचसौ वर्ष तो अभी बीकानेर बसे को भी नहीं हुए; किन्तु विक्रम सम्वत् १५४५ वैसाख सुदी २ को ही तो इस जंगल में राव श्रीबीकेजीने नगर बीकानेर को बसाया है। जिसके लिये निम्न लिखित दोहा भी प्रसिद्ध है।

दोहा।

पनरे सौ पैताल में सुद वैसाख सुमेर ॥
थावर दूज थरपियो बीके बीकानेर ॥

इस शहरको बसे ही कुल ४२५ चार सौ पच्चीस वर्ष हुए हैं तो फिर आप किस तरह फरमाते हैं कि पाँचसौ वर्ष पहिले नगर बीकानेर में इन्ही महाराजाने जयन्ती महोत्सव किया था।

उत्तर—प्रियजनों! ध्यान देके सुनो जिस पृथ्वी पर इस समय आप लोग स्थित हैं। परमेश्वर की सृष्टि में यही एक पृथ्वी नहीं है; किन्तु अनन्त पृथ्वियां हैं। देखो मनु अ० १ श्लोक ८०। और जितने हमको आकाश में तारे दिखलाई देते हैं वे सब ही पृथ्वियां हैं। और इनमें प्रकाश जो दीखता है सो सूर्यकी किरणोंके

विश्वामित्रका स्वांग धारण करनेकी शिक्षा ग्रहण की थी इस लिये जब २ वह हरिश्चन्द्रका ख्याल किया जाताथा तब २ वही मनुष्य विश्वामित्रकी जगह का काम किया करता था। वैसे ही यह संसार जो कि परमेश्वर का रचा नाटक है इसमें यह पृथ्वी मानों नाटक गृह है और सूर्य्य चन्द्रादि मानों उसमें प्रकाश है। रात्रि और दिन मानों परदे हैं। नदी पर्वत वृक्षादि मानों सुन्दर दृश्य हैं। और तमाम देहधारी मानों नाटक करने वाले हैं। और ईश्वर स्वयम् ही इसका दर्शक है। इस कुदरती नाटक में परमात्माने जिन २ जीवोंको जो २ काम दिये हैं वे जीव उन्हीं २ कामोंको जब २ वह नाटक होता है तब २ करते रहते हैं और जैसे प्राकृत नाटक में मनुष्य अपने जिम्मेका काम करके छुट्टी पाते हैं और दूसरे दिन उसी नाटकमें अपना काम करनेको फिर उपस्थित हो जाते हैं। इसी प्रकार इस संसार रूपी नाटकमें भी सर्व जीव अपना २ काम करके परलोक सिधारते हैं और ५०० वर्ष बीतने पर जब वही नाटक फिर होता है तो पहिले शरीर के अनुसार ही स्थूल शरीर धारण करके अपने जिम्मे का काम करनेके लिये जीव उपस्थित होते हैं। इस प्रकार पाँच २ सौ वर्षका एक २ नाटक होनेके हिसाब से महाराज ब्रह्माजी के दिन भरमें चौरासी लाख चार एक साही नाटक हो चुकता है।

इस लिये कहा जाता है कि यह जयन्ती महोत्सव भी कुदरती नाटक में मिला हुआ होने से जाना जाता है कि पहिले कईबार हो चुका था और भविष्यत में भी होवेगा।

और आप लोगोंने प्रश्न में यह भी पूछा था कि जयन्ती महोत्सव पहिले कब और किस महाराजके समय में हुआ था और भविष्यत में कब और किस महाराज के समय में होवेगा।

इसका उत्तर भी आपको मिल चुका है। कि यह जयन्त

भाग से प्रवेश हो जायगा। जो कि त्रेताका अग्र भाग इस समय ३९५७ नम्बर की पृथ्वी पर है। जब त्रेताका अग्र भाग ३९९६ पर आवेगा तो इसके बदले त्रेता अपनी अन्तकी पृथ्वी ६०४८ नम्बर वालोको जिस पर अपनी पूरी समय भोग चुकने के कारण छोड़ देवेंगे। इस ६०४८ नम्बर पर द्वापर का अग्र भाग प्रवेश हो जायगा। परन्तु इसी तरह द्वापर को भी अपने अन्तकी पृथ्वी नम्बर ७७७६ को इसके बदले छोड़नी पड़ैगी। इस पर कलियुग के अग्र भागका प्रवेश हो जायगा जोकि इस समय ७७७७ नम्बरकी पृथ्वी पर है और ८६४० नम्बरकी पृथ्वी पर कलियुगका अन्त है। जब यह ७७७९ नम्बरकी पृथ्वी पर आरम्भ होगा।

उस समय अपनी अन्त की पृथ्वी ८६४० नम्बरकीको कलियुग बिलकुल छोड़ देवेगा। तो उस समय सतयुग इसी पृथ्वी पर अपने अग्र भाग से प्रवेश करेगा। जिस अग्रभागको इस समय -/;पर एक की पृथ्वी पर समझिये।

इस प्रकार से चलते २ चारों युग महाराज ब्रह्माजीके प्रातः काल से सायंकाल तक में सब पृथ्वीयों पर एक हजार चक्र लगा चुकेंगे और इन युग रूपी काल भगवान्के आसरे सब जीव रहते हैं इसलिये इस पृथ्वी पर इस समय कलियुगका जो भाग है सो पांच सौ वर्ष में इसके आगेकी पृथ्वी पर चला जायगा। और जीव भी काल के आश्रय से घूमते हैं। इस लिए कलियुग के इस भागके जीव भी उसी पृथ्वी पर चले आवेंगे। और गणित द्वारा इस पृथ्वी पर ७७८७ का नम्बर आता है। जब हम लोग इस पृथ्वी पर अपने जिम्मेके सब काम कर चुकेंगे, तो इस संसार रूपी नाटकसे छुट्टी पाकर परलोकमें जाकर पाँचसौ वर्षमें शेष रहे वर्षों तक आराम करेंगे। और अपने जन्मको पाँचसौ वर्ष समाप्त होने पर फिर ७७८६ नम्बरकी पृथ्वी पर जन्म

पड़ने से है। इसी प्रकार चन्द्रमा में भी स्वयम् प्रकाश नहीं है, किन्तु यह चाहे भी स्वच्छ श्वेत स्फटिकमणि गोले के समान है। और इसके जितने भाग पर सूर्य की किरणें पड़ती हैं उतना ही भाग प्रकाशित होता है और बाकी भागपर जो छाया है वो मलिन दीखता है इस से साबित होता है कि सर्वत्र सूरज का ही प्रकाश है।

प्रियगणो! अनेक पृथिवियां होने पर भी इस भूलोक में इसी पृथ्वी के सदृश अर्थात् सूर्यादिकों से इतनी ही दूर रहने वाली और इतनी ही लम्बी चौड़ी और समुद्र पहाड़ नदी करके संयुक्त ८६४० पृथिवियां गणित द्वारा सिद्ध होती हैं। इन सब पृथिवियों का एक गोलाकार चक्र बना हुआ है। और सतयुगादि चारों युग इन पृथिवियों पर हर समय रहते हैं। ऐसा न समझिए कि इन सर्व पृथिवियों पर इस समय एक कलयुग ही है; किन्तु हर समय ३४५६ पृथ्वी पर तो सतयुग रहता है। २५९२ पर त्रेता युग,१७२८ पर द्वापर युग और ८६४ पर कलियुग रहता है।

अर्थात् इस समय पृथ्वी नम्बर एक से लेकर ३४५६ तक पर सत युग और नम्बर ३४५७ से लेकर ६०४८ तक पर त्रेता युग, नम्बर ६०४९ से लेकर नम्बर ७७७६ तक पर द्वापर युग और नम्बर ७७७७ से लेकर नम्बर८६४० तक पर कलियुग है। और यह युगादि काल रूप चक्र हमेशा इस तरह से उलटी चाल से घूमा करता है कि पाँच २ सौ वर्ष में एक २ पृथ्वीको छोड़ कर बदलेमें दूसरी पृथ्वी दबा लेता है। जैसे पाँच सौ वर्ष में सतयुग अपनी एक पृथ्वी अन्त की ३४५६ नम्बर वाली को बिलकुल छोड़ देगा। क्यों कि उन पर सतयुग आयेको पूरा समय १७२८००० वर्ष हो चुकैगा। जब उस पृथ्वीको सतयुग छोड़ेगा उसी समय उस पर त्रेता युग अपने लम्

कि जिस घरमें सालेओंकी पुत्री या पुत्र न बसता होवे जैसा कि इस समय इस पृथ्वीकें इसी शहर में मौजूद हैं। और उसी पृथ्वी नम्बर ७७८६ पर रिड़मलजी के पुत्र जोधाजी और उनके पुत्र राव बीकाजी होंगे। जब इस पृथ्वी पर विक्रम सम्वत् २०४५ होवेगा उस समय उस पृथ्वी पर राव बीकाजी शहर बीकानेर की नीव डालेंगे। और फिर जब इस पृथ्वी पर विक्रम संवत् २४६९ होगा उस समय उस पृथ्वी पर यहां महाराजाधिराज श्रीजयन्ती महोत्सव करेंगे। इसी लिये कहते हैं कि यह श्रीजयंती महोत्सव जो इस समय हो रहा है नूतन नहीं है।

जब महात्मा इस प्रश्नका उत्तर दे चुके तब सज्जन गण मारे हर्ष के उछलने लगे और महात्मा को बारम्बार धन्यवाद देते हुए कहने लगे महाराज आपने हम लोगों पर बड़ी कृपा की इस लिए आपका उपकार चिरकाल स्मरणीय रहेगा इतना सुन कर महात्मा उठ खड़े हुए क्यों कि उस समय रात्रि अधिक हो गई थी इस लिये उन्होंने जाने की इच्छा प्रकट की परन्तु उपस्थित सज्जनगणों के हृदय में इसी विषय पर कुछ और भी प्रश्न करनेकी इच्छा थी इस लिए उन्होंने दूसरे दिन महात्मा के स्थान पर जा कर उन प्रश्नोंके उत्तर पूछनेका निश्चय किया। जो कि दूसरे भागमें लिखे जायगे और महात्मासे भी इसके लिए निवेदन कर दिया। तत्पश्चात् महात्माने अपने स्थानको प्रस्थान किया और उपस्थित सज्जन गणोंने भी महात्माकी प्रशंसा करते हुए अपने २ घरोंकी राह ली।

अद्भुत विचार ग्रंथे

प्रथम भाग समाप्त।

लेवेंगे। और उस पृथ्वी पर भी उतना ही और वैसाही काम करेंगे। जितना और जैसा कि इस समय इस पृथ्वी पर कर चुके हैं और कर रहे हैं। न्यूनाधिक कुछ भी न कर सकेंगे। इस प्रकार से एक चौकड़ी भर में पाँच २ सौ वर्ष में क्रम से एक २ पृथ्वी पर जन्म लेते हुए सब पृथ्वियों पर घूम चुकेंगे। और ऊपर यह भी कहा जा चुका है कि जीव काल भगवानके आश्रय से चलता है इस लिये जब हम इस पृथ्वीको छोड़ कर पाँचसौ वर्ष पश्चात् अन्य पृथ्वी पर चले जायँगे तो काल वहाँ भी यही रहैगा। जैसे इस समय कलयुगके प्रवेश को पाँच हुजार वर्ष हुए और महाराज विक्रमादित्यकी चलाई हुई शताब्दि बीसवीं है वैसे ही दूसरी सब पृथ्वीयों पर जब२ हम जन्म लेंगे तो कलियुग के प्रवेशको वहां भी पाँच हुजार वर्ष हो चुकेंगे। और राजा विक्रम की भी यही शताब्दी रहेगी। इससे आप (ही समझ लीजिये कि जयन्ती महोत्सव इन्हीं महाराजाधिराजने इस समय से पाँच सौ वर्ष पहिले पृथ्वी नम्बर ७७८८ पर शहर बीकानेर में किया था, और भविष्यत में पाँच सौ वर्ष पश्चात् पृथ्वी नम्बर ७७८६ पर फिर भी इसी महोत्सव को शहर बीकानेरमें होंगे। कि जिस पर इस समय यवन राज्य बहुत चढ़ा हुआ है और राठोड़ वंश शिरोमणी महाराज रिड़मलजी शहर मंडूरमें इसी प्रकार राज्य शासन कर रहे हैं। जैसे कि पाँच सो वर्ष पहिले इस पृथ्वी पर इसी शहरमें करते थे। और ग्रन्थ कर्ता के पुरखों में भी माहेश्वरी, राठी, मदोजी भी मौजूद हैं। जिनोंके पुत्र भाग्यशाली लालोजी होगा सो राव बीकेजीके साथ आकर अपने नाम पर लाला सर गाँवको बसाते हुए बीकानेरमें बसेंगे और जिनकी औलाद चारसौ वर्ष में इतनी बढ़ जायगी कि शहर बीकानेरमें करीब तीन हजार घर माहेश्वरियोंके होने पर भी ऐसा कोई घर पर शायत ही निकलेगा

एक वचन से कितने ही प्रकार के मतलब सिद्ध होते हैं। इसी वास्ते श्रवण के बाद मनन, करने की आज्ञा है। क्योंकि बहुत सूक्ष्म पदार्थ मनन करने से ही बुद्धी में आते हैं। अब देखिये एक ही वचन से कितने २ मतलब निकलते हैं और वे सब माननीय समझे जाते हैं। जैसे कि भगवद्गीता।

श्लोक—

यानिशा सर्व भूतानां तस्यां जाग्रति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः॥

अर्थ—जो सर्व भूत प्राणियों की रात्री है उस में संयमी पुरुष जागते हैं और जिसमें सर्व प्राणी जागते हैं उसे योगी लोग रात्रिकी तरह देखते हैं बस यही इसका अक्षरार्थ है अब आशयकी तरफ ध्यान दीजिये।

कई फक्कड़ लोग धूनी तापने वाले इस श्लोकका आसय यह लेते हैं कि हम योगियोंको रात्रि में जागना और दिन में सोना चाहिये; और स्वरोदयके अभ्यास करने वाले संत इस श्लोक का आशय यह लेते हैं कि हम योगियों को रात्रि में सूरज का और दिनमें चन्द्रमा का स्वर चलाना चाहिये। क्योंकि सूरज स्वर जागना और चन्द्रमा का स्वर सोना माना जाता है। स्वरोदयके अभ्यासियों के इस, आशय को सिद्ध करने के लिए एक दोहा भी प्रचलित है। सो यह है।

दोहा।

दिन चलावें चन्द्रमा, रात चलावे सूर।
जोगी यह साधन करें, होय उमर भरपूर॥

और भी सुनिए वेदान्ती विद्वान लोग इसी श्लोक का आशय

अद्भुत विचार ग्रंथ !

द्वितिय भाग प्रारंभः ॥

दूसरे दिन सायंकाल के समय जब वह मनुष्य महात्माके स्था
पर जा कर बाद नमस्कारादीके इस प्रकार पूछने लगे।

प्रश्न—महाराज शास्त्र वेताओं से तो ऐसा सुना गया है कि
ईश्वर की माया अनन्त है। इसकी थाह कभी नहीं मिलती, तो फि
आपने यह किस तरह कहा कि सब पदार्थ सागी के सागी ही होते है

उत्तर—सुनो भाईयो ईश्वर की माया प्राकृत मनुष्योंकी दृष्टीमें तो
अनन्त ही है, परन्तु योगियोंकी दृष्टी में ऐसी अनन्त नहीं है औ
ईश्वरकी दृष्टी में तो यही माया बिलकुल तुच्छ है। इस वास्ते इस
विषयमें केवल दृष्टी का ही फेर है। अर्थात जैसी जिसकी दृष्टि
होती है वैसी ही माया प्रतीत होती है इस लिए तुमारी शंका बन
नहीं सकती।

प्रश्न—आपने कल कहा था कि कल्प भर में चौरासी लाख वा
वैसा का वैसा ही शरीर होता है। इसमें कुछ शंका होती है क्यों
कि शास्त्रों से चौरासी लाख जन्तुओंकी जाति तो पाई जाती है, परन्तु
चौरासी लाख बार वैसा ही शरीर का मिलना तो आज तक किसी
से नहीं सुना। आप किस तरह कहते हैं।

उत्तर—सुनो सज्जनों! अपने शास्त्रों के वचन बहुत ही गंभीर हैं।
यदि एक वचन पर भी पूरा २ मनन (विचार) किया जाय तो इन्हीं

है। जब उदार चित्त से द्रव्य खर्चेगा तो द्रव्य से मोह छूटने करके अनेक सद्गुणों की प्राप्ती भी होवेगी और अनेक अपगुणों का भंडार लोभ भी दूर हो जायगा। जिस लोभ को महाराज भर्तृहरिने भी अवगुणोंका भंडार कहा है।

"लोभश्चेद् गुणेन किम्।"

अर्थ :—जिसमें एक लोभ है उसको अन्य अपगुणों से क्या प्रयोजन है अर्थात् लोभ से सब ही अपगुण इकट्ठे हो जाते हैं।

अब विचारिए कि जैसे ऊपर लिखे अनुसार एक ही संकेत से कई आशय मिलते हैं और वे सब यथार्थ हैं। और अपने २ प्रकरण में ठीक घट भी जाते हैं। वैसे ही इस चौरासी लाख के एक संकेत से भी कई प्रकारके मतलब निकलते हैं। सो भी यथार्थ और अपने २ प्रकरण पर ठीक घटने वाले हैं। यही तो हमारे शास्त्रों की गंभीरता है। अब सुनो कोई तो कहते हैं कि चौरासी लाख प्रकारके नरक हैं जिनों में यमराजकी आज्ञानुसार पापात्माओंको यम किंकर अनेक प्रकार की यातना भोगा रहे हैं और कोई कहते हैं कि चौरासी लाख प्रकारकी जीवों की योनिया हैं। और हठयोगवाले कहते हैं कि चौरासी लाख प्रकार का आसन है। और मेरे अनुभव में यह आता है कि जीवों के चौरासी लाख एक से ही शरीर होते हैं सो कल्प पर्यन्त बारम्बार बदले जाते हैं। जैसा कि मैं पहिले कह चुका हूं परन्तु सूक्ष्म रीतिसे विचारा जावे तो शरीर तो एक ही है। इसी शरीर का समय २ पर प्रादुर्भाव तिरोभाव होता रहता है। कार्य होकर दृष्टी में आने वाले को प्रादुर्भाव कहते हैं। और कारण में लय होकर अदृष्ट होनेवालेको तिरोभाव कहते हैं। सत्कार्य वादको मानने वाले होने से वेदान्त और सांख्य शास्त्र ने भी

यह लेते हैं कि परमार्थ सता, अर्थात आत्म साक्षातकार सर्व भूत प्राणियों को रात्रि की नाईं, अप्रत्यक्ष है। उस परमार्थ सत्ता में संयमी (योगी) लोग जागते हैं अर्थात् हर समय उपस्थित रहते हैं। और व्योहारिसत्ता में जो कि सर्व भूत प्राणी जागते हैं उसी व्योहार सत्ता को योगी लोग रात्रिकी तरह देखते हैं। अर्थात् स्मरण रहित रहते हैं और दूसरे भी सुनिये एक समय, दानव, देवता, और मनुष्य तीनों ही ब्रह्माजी के पास गये और उन्होंने उपदेश की प्रार्थना की जिस पर महाराज ने एक दकार अक्षर से ही तीनोंको उपदेश किया। अर्थात् केवल 'द' इतना ही कहा।

इस 'द' का अर्थ दानवोंने यह समझा कि हम लोग निर्दई हैं। इस लिए मनुष्यादि जो कोई मिलता है उसे बिना मारे नहीं छोड़ते इस वास्ते महाराजने हमे 'द' शब्द करके दया रखने के लिए ही कहा है।

देवताओं ने इसी 'द' शब्द का अर्थ यह समझा कि हम लोग स्वर्ग के दिव्य भोगों की प्राप्ती से संसारी विशयों में लम्पट हो रहे हैं। और विषय लमटोंका पुण्य क्षीण होनेके पश्चात् दुर्गति हुआ करतीहै।

इस कारण से महाराजने हमे 'द' शब्द करके इन्द्रियों को दमन करने का उपदेश दिया है। और मनुष्यों ने इसी 'द' शब्द का अर्थ यह समझा कि महाराजने हमें 'द' शब्द करके दान देने का उपदेश दिया है। क्यों कि हम लोग द्रव्योपारजन करने में अनेक पाप कर लेते हैं। और द्रव्य के ही कारण सनातन प्रीतो को छोड़ कर पिता पुत्र भ्राता २ परस्पर द्वेश कर बैठते हैं। इस लिए इस द्रव्य से मोह छोड़ कर दीनों के प्रती दान करनेका और अपने कुटम्बी वा इष्ट मित्रादिकों के दुखोंको दूर करने के वास्ते द्रव्य खर्च करना। इत्यादि महाराज ब्रह्माजीने 'द' शब्द करके दान का ही उपदेश दिया

उत्तर—एक चार वाक चार्वाक (नास्तिक) को छोड़ कर अन्य सर्व मत मतान्तरों वाले कर्मानुकूल कर्मफलको मानते हैं ऐसे ही मैं भी मानता हूँ।

प्रश्न—जब आप शास्त्र कथित कर्मानुकूल फलों का होना मानते हैं तो फिर वैसा का वैसा मनुष्य शरीर और वैसा का वैसा भोग मिलना किस प्रकार कहते हैं। क्यों कि शास्त्रानुकूल चलने वालों को तो देश काल शरीर और भोगादि उत्तर शरीरमें उत्तम मिलने चाहिये। और निषेध कर्म करने वालों को नीच शरीर और दुष्ट भोगादि फल मिलने चाहिये। और सर्व मनुष्योंका एकसा कर्म तो कभी हो ही नहीं सकता कि जिससे सब ही को फिर मनुष्य और वैसा का वैसा ही शरीर मिले। इसी कारण से आपके कथनानुसार सांगी नाटक का होना क्यों कर माना जावे।

उत्तर—मैं भी तो यह नहीं कहता कि सारे ही मनुष्योंका एकसा कर्म होता है; जिस कर्मों के फल करके फिर पीछे सांगी का सांगी ही मनुष्यादि शरीर मिलता है। क्यों कि मनुष्य शरीर से किए हुए कर्मों के फलों से ही तो पशु, पक्षादिकनकी योनि मिलती है। परन्तु पहिले इस बात का निश्चय होना आवश्यक है कि किये हुए कर्मोंका फल कितने वर्षोंके पश्चात भोगने में आता है। कर्म भी दृष्ट और अदृष्ट भेद करके दो प्रकार के होते हैं। जिसमें दृष्ट कर्मोंके फल तो किंचित काल में ही हो जाता है। जैसे कि भोजन किया तृप्ती आई, गाली दी थप्पड़ की खाई और दूसरा अदृष्ट कर्म जिसके वास्ते कदाचित कोई कहे किसी शास्त्र में तो ऐसा लेख देखने में नहीं आया कि किये हुए कर्मों का फल इतने वर्षोंके बाद भोगने में आता है। परन्तु अनुमान से जाना जाता है कि इस शरीर से किये हुए कर्मों के फल को कोई तो इसी शरीर से भोग चुकते हैं जैसे कि किसीने

ऐसा ही माना है। कि उत्पन्न होने से पहिले भी कारण में कार्य मौजूद था। और नाश होने पर भी कारण में कार्यलय हो कर के मौजूद ही रहता है। अर्थात किसी सतवस्तु का किसी काल में भी कदापि नाश नहीं होता। और जैसे सत वस्तु का अभाव तीनों कालों में नहीं होता तैसे ही असत वस्तु का भाव अर्थात् प्रकट होना कदापि नहीं होता। ऐसा ही श्रीभगवानने भी कहा है:—

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।

उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्वदर्शिभिः॥

अर्थः—सत्य वस्तुका अभाव नहीं होता और असत्य वस्तुका भाव नहीं होता इन दोनों को तत्व दर्शी पुरुष अच्छी तरह जानते हैं इनसे भी सिद्ध होता है कि पहिले कारण में जो उपस्थित रहती है वही वस्तु प्रकट होती है। अन्य कदापि नहीं।

ऋग्वेद का मंत्रः—

सूर्य्या चन्द्र मसोधाता यथा पूर्वम् कल्प यत्।
दिवञ्च पृथिवीञ्चान्तरिक्ष मथोस्वः॥

अर्थः—विधाताने पूर्व कल्प में जैसे सूर्य्यादिकोंको को रचा था वैसे ही इस कल्प में भी रचे हैं।

इस मन्त्र से भी यह सिद्ध होता है कि अन्य कल्पोंमें भी इस कल्प के सदृश ही सृष्टि होवेगी। जब इसी प्रकार सृष्टी होवेगी तो इन ही शरीरों का जो इस कल्प में स्थित हैं फिर प्रादुर्भाव होता रहेगा।

प्रश्न—शास्त्र कथित परोपकारादि शुभ कर्म करने वालों को स्वर्गादि सुखों का भोग मिलना और पर पीड़ादि निषेध कर्म करने वालोंको नरकादि दुःख मिलना इत्यादि कर्मानुकूल कर्म फलों का होना आप मानते हैं या नहीं।

उत्तर—एक चार चक अर्थात् (नास्तिक) को छोड़ कर अन्य सर्व
मतान्तरों वाले कर्मानुकूल कर्मफलको मानते हैं वेसे ही मैं भी
मानता हूँ।

प्रश्न—जब आप शास्त्र कथित कर्मानुकूल फलों का होना मानते
तो फिर वैसा का वैसा मनुष्य शरीर और वैसा का वैसा भोग
लना किस प्रकार कहते हैं। क्यों कि शास्त्रानुकूल चलने वालों
तो देश काल शरीर और भोगादि उत्तर शरीरमें उत्तम मिलने
चाहिये। और निषेध कर्म करने वालों को नीच शरीर और दुष्ट
भोगादि फल मिलने चाहिये। और सर्व मनुष्योंका एकसा कर्म तो
भी हो ही नहीं सकता कि जिससे सब ही को फिर मनुष्य और
वैसा का वैसा ही शरीर मिले। इसी कारण से आपके कथनानुसार
सांगी नाटक का होना क्यों कर माना जावे।

उत्तर—मैं भी तो यह नहीं कहता कि सारे ही मनुष्योंका एकसा
कर्म होता है; जिन कर्मों के फल करके फिर पीछे सांगी का सांगी
ही मनुष्यादि शरीर मिलता है। क्यों कि मनुष्य शरीर से किए
हुए कर्मों के फलों से ही तो पशु, पक्षादिकनकी योनि मिलती है।
परन्तु पहिले इस बात का निश्चय होना आवश्यक है कि किये हुए
कर्मोंका फल कितने वर्षोंके पश्चात् भोगने में आता है। कर्म भी
दृष्ट और अदृष्ट भेद करके दो प्रकार के होते हैं। जिसमें दृष्ट कर्मोंके
फल तो किंचित् काल में ही हो जाता है। जैसे कि भोजन किया
भूखी थाई, गाली दी थप्पड़ की खाई और दूसरा अदृष्ट कर्म जिसके
कहने कदाचित कोई कहे किसी शास्त्र में तो ऐसा लेख देखने में नहीं
आया कि किये हुए कर्मों का फल इतने वर्षोंके बाद भोगने में आता है।
परन्तु अनुमान से जाना जाता है कि इस शरीर से किये हुए कर्मों
के फल को कोई तो इसी शरीर से भोग चुकते हैं और कि किसीने

मनुष्य हत्या की और उसके फल में फँसी पाई। और कोई ऐसा भी कर्म होता है जिसका फल इस शरीर को छोड़ देनेके बाद स्वर्ग अथवा नरक पाते हैं। और कई कर्मोंके फलोंको दूसरे या तीसरे जन्ममें भोगते हैं। ऐसा कोई नेम नहीं है कि किए हुए कर्मों का फल इतने वर्षोंके बाद ही भोगने में आता है।

यह अनुमान करना ठीक नहीं और कर्मों के फल भोगने में कोई नेम नहीं ऐसा कहना भी उचित नहीं है। क्यों कि यह जगत सर्वज्ञ ईश्वर की रची हुई है। इसमें सब बातोंका नेम है यहां तक कि नियम के विरुद्ध वृक्ष का एक पत्ता भी नहीं हिल सकता। तो फिर कर्म तो बहुत ही बड़ी बात है जिसके वास्ते नियम नहीं ऐसा कभी नहीं हो सकता क्यों कि संसार के चलने की जड़ ही तो यह कर्म है। जैसे २ कर्म किये जाते हैं वैसे ही वैसे शरीर वा भोगादि मिलते रहते हैं यही तो सृष्टी के चलने का क्रम है। इस लिये यही कहना चाहिये कि नियम तो जरूर है परन्तु शास्त्रोंमें कहीं प्रगट रीति से ऐसा नहीं देखने में आया कि इतनी अवधि तक में कर्मोंका फल पक कर भोग देने के योग्य होता है। इसी कारण से हम लोग नहीं जानते कि कर्मों का फल कितने समय से मिलता है।

और कदापि कोई हठ पूर्वक कहे कि कर्मोंके फल भोगने में समय का नियम है ही नहीं तो उनसे पूछना चाहिये कि आज किसीने शुभ या अशुभ कर्म किया उस कर्म का फल कर्म कर्ताको ऐसा और इस समय में मिलेगा ऐसा ईश्वर को मालूम है या नहीं।

यदि ऐसा कहा जाय कि ईश्वरको भी विदित नहीं है तो ईश्वर के त्रिकालदर्शी और सर्वज्ञ होने में शंका होती है व शास्त्रों में भी दोष आवेंगे। क्यों कि शास्त्र में ईश्वर को सर्वज्ञ और त्रिकालदर्शी कहते हैं। और यदि कहा जाय कि ईश्वरको विदित है कि इस कर्म का

यह फल कर्म—कर्ताको उस काल में मिलेगा। तो कर्म कर्ताको कर्मोंका फल इतने समय के पश्चात् मिलता है ऐसा नियम का होना भी निश्चय हो चुका। निःसंदेह यही कहना पड़ेगा कि नियम तो है परन्तु हम नहीं जानते। कि कितने समय के बाद कर्मोंका फल मिला करता है।

और यह जानना कि किसीको तो कर्म फल इसी शरीर करके शीघ्र ही भोगने में आजाते हैं जैसे कि राज्य दंडादि करके और किसी को देर से मिलता है तो जानना ठीक नहीं। क्यों कि जब पाँच मनुष्योंने एक समय में एकसा ही कर्म किया फिर उसमें एक को तो इसी जन्ममें फल मिले दूसरे को मरने के बाद। अन्यों को दूसरे तीसरे जन्मों में मिले ऐसा अँधेर ईश्वरके नियम में क्या कभी हो सकता है ? नहीं २ कभी नहीं। किन्तु उन सब को कर्मोंका फल एक ही काल में और एक साही मिलेगा। क्यों कि जब उन सबोंने एक ही कालमें एक साही कर्म किया था।

और इसी शरीर से किये हुए कर्मों का फल इसी शरीर करके राज्य दंडादि द्वारा मिलता है ऐसा भी जानना ठीक नहीं है क्यों कि "गहना कर्मणांगति" इस वचन से जाना जाता है कि कर्मोंकी गति गहन अर्थात् बहुत सूक्ष्म है। तत्ववेता पुरुषोंके और देवों के भी समझने में नहीं आती तो प्राकृत मनुष्योंकी तो बात ही क्या जो कुल कर्मों का फल कर्मानुकूल दे सके। राज्य दंड इस समय के किये हुए कर्मोंके फलों को नहीं भोगाता किन्तु राजा अपनी प्रजा को निषेध कर्म करने से भय दिखला कर रोकते हैं। और कानून द्वारा यह भी शिक्षा देते हैं कि अमुक कर्म करोगे तो ऐसे २ दंड पावोगे।

अब सुनिए कर्मोंका फल इतने समय में एक बार भोग देने

मनुष्य दुःखी भी और उसके फल में फंसे पाई। और कोई ऐसा भी कर्म होता है जिसका फल इस शरीर को छोड़ देनेके बाद स्वर्ग अथवा नरक पाते हैं। और कई कर्मोंके फलोंको दूसरे या तीसरे जन्ममें भोगते हैं। ऐसा कोई नेम नहीं है कि किए हुए कर्मों का फल इतने वर्षोंके बाद ही भोगने में आता है।

यह अनुमान करना ठीक नहीं और कर्मों के फल भोगने में कोई नेम नहीं ऐसा कहना भी उचित नहीं है। क्यों कि यह जगत सर्वज्ञ ईश्वर की रची हुई है। इसमें सब बातोंका नेम है यहां तक कि नियम के विरुद्ध वृक्ष का एक पत्ता भी नहीं हिल सकता। तो फिर कर्म तो बहुत ही बड़ी बात है जिसके वास्ते नियम नहीं ऐसा कभी नहीं हो सकता क्यों कि संसार के चलने की जड़ ही तो यह कर्म है। जैसे २ कर्म किये जाते हैं वैसे ही वैसे शरीर वा भोगादि मिलते रहते हैं यही तो सृष्टी के चलने का क्रम है। इस लिये यही कहना चाहिये कि नियम तो जरूर है परन्तु शास्त्रोंमें कहीं प्रगट रीति से ऐसा नहीं देखने में आया कि इतनी अवधि तक में कर्मोंका फल पक कर भोग देने के योग्य होता है। इसी कारण से हम लोग नहीं जानते कि कर्मों का फल कितने समय से मिलता है।

और कदापि कोई हठ पूर्वक कहे कि कर्मोंके फल भोगने में समय का नियम देखा नहीं तो उनसे पूछना चाहिये कि आज किसीने शुभ वा अशुभ कर्म किया उस कर्म का फल कर्म कर्ताको कैसा और इस समय में मिलेगा ऐसा ईश्वर को मालूम है या नहीं।

यदि ऐसा कहा जाय कि ईश्वरको भी विदित नहीं है के त्रिकालदर्शी और सर्वज्ञ होने में शंका होती है व शास्त्रों में भी जावेंगे। क्यों कि शास्त्र में ईश्वर को सर्वज्ञ और त्रिकालदर्शी है। और यदि कहा जाय कि ईश्वरको विदित है कि इस

सृष्टि उत्पन्न होवे। इस से यह सिद्ध होता है कि जीवोंके कर्मों
फल भोगनेके सन्मुख होने के निमित से ही सृष्टी की रचना होती
है। बस इससे यह भी सिद्ध हो चुका है कि कर्मोंका फल पूर्व
समय से पहिले वा पश्चात् भोगाया नहीं जाता किन्तु जिस
समय जीवोंका कर्म फल देने लायक होता है उसी समय ईश्वरके
भी जीवोंके कर्म फलों को अवश्य ही भोगाना पड़ता है। इससे यह
ठीक सिद्ध हो चुका कि इस कल्प में किए हुए कर्मोंका फल तो इस
कल्प में भोग ही नहीं सकता। इस वास्ते कर्मोंके विचित्रता होने
से तो मेरे माने हुए नाटकमें किसी प्रकार का दोष नहीं आता।

प्रश्न—महाराज गणित और युक्ती द्वारा तो यह सिद्ध हो
गया कि किये हुए कर्मोंका फल आठ अर्ब चौसठ करोड़ वर्षोंसे
पहिले नहीं मिल सकता। परन्तु इसी विषय में यदि शास्त्रोंका
आशय भी कोई मिल जाय तो आपके कथन में पूरा विश्वास हो
जाय। यदि स्मरण है तो बतलाइए।

उत्तर—हाँ है सुनियेः—शास्त्रोंका आशय भी ऐसा ही पाया
जाता है कि कर्म कर्ताको कर्म फल देनेके सनमुख दीर्घ काल में ही
हुआ करता है देखो वेदान्त शास्त्रमें कर्म तीन प्रकार के कहे हैं
प्रारब्ध, क्रियमाण (आगामी) और संचित इन तीनों में प्रारब्ध कर्म
उसको कहते हैं कि जिन कर्मोंका फल पक कर भोग देनेके सनमुख
हो चुका हो और इसी शरीर करके तमाम भोग लिया जायगा
जिन कर्मोंके भोग करके नष्ट होने से शरीर भी नष्ट हो जायगा
इसीको प्रारब्ध कर्म कहते हैं। और जो कर्म इस वर्तमान शरीर करके
कर चुके हैं वा कर रहे हैं वा करते रहेंगे। इन्हीं कर्मों को आगामी
कर्म कहते हैं। अब संचित कर्मोंको ध्यान पूर्वक सुनिये। अनन्त
कोटि जन्मोंका किया हुआ शुभाशुभ कर्म आज तक पक कर अपना
फल सुख दुखादि देने के सन्मुख नहीं हुआ और अनन्त

योग्य होता है। ऐसा तो मैं नहीं कह सकता, परन्तु शास्त्र आशय को लेकर गणित द्वारा यह तो ठीक जचता है कि एक क अर्थात् आठ अर्ब चौसठ करोड़ वर्षों तक की समय से पहिले किए हुए कर्मों का फल कोई भोग ही नहीं सकता। क्यों कि वि करके देखिये यदि एक हजार वर्ष तक की अवधी में यदि कर्म फ भोगना माना जावे तो महा प्रलय से दो सौ वर्ष पहिले किये हु कर्मोंका फल प्रलय के शुरू से आठ सौ वर्ष पश्चात् अर्थात् प्रलय बीच ही में भोगने में आना चाहिये। परन्तु महा प्रलय मे को जीव कर्म फल भोगही नहीं सकता। क्यों कि पुरी समय के बी में प्रलय भी टूट नहीं सकती और फल देने के योग्य हुआ कर्म अपना कार्य्य किए बिना नहीं ठहरता। इस लिए यदि एक क से पहिले कर्मों का फल मिलना माना जाय तो महा प्रलय बाधाएं पड़े बिना कदापि न रहेगी। इस लिये यही सिद्ध हो कि एक कल्प तकका समय अर्थात् आठ अरब चौसठ करोड़ वर्षों पहिले कर्मोंका फल होना असम्भव है।

और यह भी सिद्ध होता है कि इस कल्प के जिस भाग में कर्म किया जायगा उसका फल अन्य कल्प के उसी भाग में भो ने में आवेगा और महा प्रलय के समय न तो कोई कर्म करता है न किसी को कर्म फल भोगने में आता है।

कदाचित कोई कहे कि महा प्रलय के बीच में तो कर्मोंका फल भो नहीं जाता इस लिए महाप्रलय के बीचमें पड़ने वाले कर्मोंका फ महाप्रलय से पहिले या अन्त में क्यों न भोगा जावे और एक कल्प के बाद इतनी देर से कर्मों का फल होना क्यों माना जावे। सुनिए कि शास्त्रों में यह स्पष्ट रीति से लिखा है कि जब जीवों कर्मों का फल भोग देने के सन्मुख होता है उसी समय ईश्वर यह इच्छा होती है कि जीवों के कर्मों का फल भोगनेके वास्ते

सृष्टि उत्पन्न होवे। इस से यह सिद्ध होता है कि जीवोंके कर्मोंके फल भोगनेके सन्मुख होने के निमित से ही सृष्टी की रचना होती है। बस इससे यह भी सिद्ध हो चुका है कि कर्मोंका फल पूरे समय से पहिले वा पश्चात् भोगाया नहीं जाता किन्तु जिस समय जीवोंका कर्म फल देने लायक होता है उसी समय ईश्वरको भी जीवोंके कर्म फलों को अवश्य ही भोगाना पड़ता है। इससे यह ठीक सिद्ध हो चुका कि इस कल्प मे किए हुए कर्मोंका फल तो इस कल्प में भोग ही नहीं सकता। इस वास्ते कर्मोंकी विचित्रता होने से तो मेरे माने हुए नाटकमें किसी प्रकार का दोष नहीं आता।

प्रश्न—महाराज गणित और युक्ती द्वारा तो यह सिद्ध हो गया कि किये हुए कर्मोंका फल आठ अर्ब चौसठ करोड़ वर्षोंसे पहिले नहीं मिल सकता। परन्तु इसी विषय में यदि शास्त्रोंका आशय भी कोई मिल जाय तो आपके कथन में पूरा विश्वास हो जाय। यदि स्मरण है तो बतलाइए।

उत्तर—हां है सुनियेः—शास्त्रोंका आशय भी ऐसा ही पाया जाता है कि कर्म कर्ताको कर्म फल देनेके सनमुख दीर्घ काल में ही हुआ करता है देखो वेदान्त शास्त्रमें कर्म तीन प्रकार के कहे हैं; प्रारब्ध, क्रियमाण (आगामी) और संचित इन तीनों में प्रारब्ध कर्म उसको कहते हैं कि जिन कर्मोंका फल पक कर भोग देनेके सनमुख हो चुका हो और इसी शरीर करके तमाम भोग लिया जायगा। जिन कर्मोंके भोग करके नष्ट होने से शरीर भी नष्ट हो जायगा। इसीको प्रारब्ध कर्म कहते हैं। और जो कर्म इस वर्तमान शरीर करके कर चुके हैं या कर रहे हैं या करते रहेंगे। इन्हीं कर्मों को आगामी कर्म कहते हैं। अब संचित कर्मोंको ध्यान पूर्वक सुनिये। अनन्त कोटि जन्मोंका किया हुआ शुभाशुभ कर्म आज तक पक कर अपना फल सुख दुखादि देने के सन्मुख नहीं हुआ और अनन्त

कोटि जन्मों तक में इन संचित कर्मों का फल सुखदुखादि भविष्य काल में भोगा जायगा उनको संचित कर्म कहते हैं। यह तो आप सुन ही चुके अब एक स्मृतिको भी सुनिए।

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभा शुभम्,
नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्प कोटि शतै रपि।

अर्थ किए हुए शुभाशुभ कर्मों का फल, अवश्य ही भोगना पड़ेगा। बिना भोगे सो कोटी कल्पों तक भी कर्म क्षीण नहीं होता।

अब देखिये कर्मों का फल शीघ्र ही मिलना माना जाय तो संचित कर्म के विधान में ऐसा कभी नहीं कहा जाता कि अनन्त कोटी जन्मों का किया हुआ कर्म अभी तक फल देने के सनमुख नहीं हुआ किन्तु आगे अनन्त कोटी जन्मों में ही फल देनेके सनमुख होवेगा। इससे और उपरोक्त स्मृती वचन से यह सुस्पष्ट है कि किये हुए कर्मोंका फल बहुत समयके पश्चात ही मिलता है। क्यों कि जिस शरीर करके जिस समय कर्म किया जाता है उस समय तो थोड़ी कर्म आगामी गिने जाते हैं। फिर शरीर पातके अनन्तर, वही कर्म, संचित कर्मों में मिलने करके संचित कर्म कहलाते हैं। जब फिर उन्हीं कर्मोंका फल एक बार भोग देनेके सनमुख होता है तब उन्हीं कर्मोंको प्रारब्ध कर्म कहते हैं। इन्हीं प्रारब्ध कर्मों के भोगने के वास्ते ही शरीर की उत्पत्ति होती है। और भोगों करके कर्मोंके क्षीण होने से शरीर भी नष्ट हो जाता है। यही शास्त्रोंका सिद्धान्त पाया जाता है। अब इस विषय में यह विचार उपस्थित है कि अनन्त कोटी जन्मों तक [illegible] [illegible] नहीं आता है इसमें कोई निमित्त है या

नहीं सकता। क्यों कि जीव तो कर्मोंके फलोंको भोगनेमें स्वतंत्र नहीं है। इस लिए जीव सम्बन्धी तो कोई निमित्त बन नहीं सकता। किन्तु ईश्वर ही सर्व जीवोंको समय २ पर कर्मानुकूल फल प्रदान करते हैं। सो सर्वज्ञ होने से ईश्वर में ऐसा दोषा रोप कोई भी कर नहीं सकता कि भूलजाने आदी किसी निमित्त को ले कर के जीवों को ठीक समय पर ईश्वर कर्मोंका फल न दे सकता हो।

इस लिए यही माना जायगा कि स्वभाविक ही कर्म फल बहुत समय से पक कर फल देनेके सनमुख होते हैं परन्तु शुभाशुभ कर्मोंका साधारण फल वा मुख्य फल इन भेद करके दो प्रकारके होते हैं जैसे कि वृक्ष लगाने का फल साधारण छाया रूप फल तो थोड़े ही कालमें होजाता है परन्तु आम आदि मुख्य फलोंकी प्राप्ति तो दीर्घ काल में ही होती है तैसे ही शुभ कर्मी पुरुष कूं इस लोक परलोक में ठाँवे २ धन्यवाद मिलना और निषेध कर्म करने वालोंकू उभयलोक में धिक्कारादि मिलना यह तो छाया कि तरह साधारण फलका मिलना तो तुरन्त ही शुरु हो जाता है और कल्पों पर्यन्त इज्जतमें शामल रहता है तब तकको मुख्य फल न भोगने में आया हो और मुख्य फल एक कल्प तक की समय से पहिले नहीं मिल सकता इस को सिद्ध करनेके लिये यह शास्त्र का आशय भी आपको बतला चुके अब और कुछ पूछना हो सो निसन्देह पूछिए।

प्रश्न—महाराज! आपके कथन से तो यह सिद्ध होता है कि इन चोरासी लाख जन्मों के शरीरोंकी चेष्टा लागी ही रहती है क्यों कि यदी चेष्टा अन्यान्य जन्ममें अन्यान्य प्रकारकी होनी मानी जाय तो खाली नाटक भी नहीं हो सकता इसलिए पहिले जन्म के सदृश ही दूसरे जन्ममें चेष्टा के होनेमें कोई प्रमाण याद होवे तो बतलाइये।

उत्तर—हाँ यहाँ पर जन्म के सदृस चेष्टा होने में बहुत से प्रमा पाये जाते हैं परन्तु समय अधिक जानेके भयसे गीता का एक प्रमाण देता हूँ सुनिए।

सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि।
प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति॥

अर्थ—प्रकृति ज्ञानवान को भी सदृश अर्थात वैसी की वैसी सारी चेष्टा करा देती है। तो फिर प्राकृत मनुष्य उस प्रकृती को किस तरह रोक सकेंगे। इससे आप समझ लीजिये कि कल्प भरके सर्व जन्मों में चेष्टा एकसी ही होती है।

प्रश्न—महाराज यह भी तो बतलाइए कि प्रकृती सारी चेष्टा सर्व जन्मोंमें किसीकी प्रेरणा से कराती है वा स्वयं।

उत्तर—प्रकृती स्वयं तो जड़ है इस लिए वो स्वतः सारी चेष्टा नहीं करा सकती परन्तु ईश्वर की प्रेरणा से ही वो वैसीकी वैसी चेष्टा कराती है। जैसा कि गीता में लिखा है।

श्लोक—

ईश्वरः सर्व भूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्व भूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥

अर्थ—जैसे कोई यन्त्र में अपने बलको आरूढ करके यन्त्रको घुमाता है तैसे ही ईश्वर सर्व भूत प्राणियोंके हृदय देश में स्थित हो कर माया रूपी यन्त्र से सर्व प्राणियोंको घुमारहा है। अर्थात चेष्टा करा रहा है।

और पाँडव गीताके श्लोक से भी यही साबित होता है कि कोई अन्तर्यामी हृदय में स्थित है वो जैसी प्रेरणा करता है वैसा ही हम लोगोंको करना पड़ता है।

जो यह श्लोक है—

(महाराज दुर्योधन का वचन)

जानामि धर्मं नच मे प्रवृत्तिः
जानाम्यधर्मं नच मे निवृत्तिः ॥
केनापि देवेन हृदिस्थितेन
यथा नियुक्तोस्मि तथा करोमि ॥

अर्थ—मैं धर्मको सुख का हेतु जानता भी हूँ परन्तु धर्म पूर्वक आचरण करनेमें मेरी प्रवृत्ति नहीं होती और अधर्म को दुःख का हेतु भी जानता हूँ परन्तु अधर्म करने से मेरा चित्त नहीं हटता इस लिये मैं निश्चय कर के जानता हूँ कि कोई देव अर्थात् अन्तर्यामी मेरे हृदय देह में विराजमान है यह देव मेरे चित्त विषय जैसी प्रेरणा करता है वैसा ही मुझ को करना पड़ता है।

प्रश्न—महाराज सर्व जीव परमात्माकी प्रेरणानुसार ही चेष्टा करते हैं तो परमेश्वर में भी पक्षपातादि दोषारोप करना पड़ेगा। क्यों कि परमेश्वर किसी को तो अच्छी प्रेरणा द्वारा सुख का भागी बना देते हैं और किसी के हृदय में बुरी प्रेरणा करके अथाह दुख में डुबा देते हैं। और शास्त्र वेत्ता विद्वान् तो परमेश्वर को न्यायाधीश, दयालु कहते हैं। सो प्रेरक और न्यायाधीश व दयालु यह सर्व परस्पर विरुद्ध बातें एक परमेश्वर में किस तरह घट सक्ती हैं। यह शंका दीर्घ काल से ही हमारे चित्त को क्षोभित कर रही है इस लिये कृपा करके हम लोगों की यह भी शंका आप निवारण कर दीजिए।

उत्तर—प्रियजनों विद्वानोंका कहना बहुत ठीक है परमेश्वरमें कोई भी किसी प्रकार का दोषा रोप हो ही नहीं सक्ता जिसका कारण यह है। परमात्मा अन्तर्यामी सर्व जीवों की बुद्धि क्यों

उत्तर—हाँ यहाँ पर जन्म के सदृश चेष्टा होने में बहुत से प्रमाण पाये जाते हैं परन्तु समय अधिक जानेके भयसे गीता का एक ही प्रमाण देता हूँ सुनिए।

सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि।
प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति॥

अर्थ—प्रकृति ज्ञानवान को भी सदृश अर्थात वैसी की वैसी सारी चेष्टा करा देती है। तो फिर प्राकृत मनुष्य उस प्रकृती को किस तरह रोक सकेंगे। इससे आप समझ लीजिये कि कल्प भरके सर्व जन्मों में चेष्टा एकसी ही होती है।

प्रश्न—महाराज यह भी तो बतलाइए कि प्रकृती सारी चेष्टा सर्व जन्मोंमें किसीकी प्रेरणा से कराती है वा स्वयं।

उत्तर—प्रकृती स्वयं तो जड़ है इस लिए वो स्वतः सारी चेष्टा नहीं करा सकती परन्तु ईश्वर की प्रेरणा से ही वो वैसीकी वैसी चेष्टा कराती है। जैसा कि गीता में लिखा है।

श्लोक—

ईश्वरः सर्व भूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्व भूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥

अर्थ—जैसे कोई यन्त्र में अपने कलको आरूढ़ करके यन्त्रको घुमाता है तैसे ही ईश्वर सर्व भूत प्राणियोंके हृदय देश में स्थित हो कर माया रूपी यन्त्र से सर्व प्राणियोंको घुमारहा है। अर्थात् चेष्टा करा रहा है।

और इस गीताके श्लोक से भी यही साबित होता है कि कोई अन्तर्यामी हृदय में स्थित है वो जैसी प्रेरणा करता है वैसा ही इस शरीरको करना पड़ता है।

जो यह श्लोक है—

(महाराज दुर्योधन का वचन)

जानामि धर्मं नच मे प्रवृत्तिः
जानाम्यधर्मं नच मे निवृत्तिः ॥
केनापि देवेन हृदिस्थितेन
यथा नियुक्तोस्मि तथा करोमि ॥

अर्थ—मैं धर्मको सुख का हेतु जानता भी हूँ परन्तु धर्म पूर्वक आचरण करनेमें मेरी प्रवृत्ति नहीं होती और अधर्म को दुःख का हेतु भी जानता हूँ परन्तु अधर्म करने से मेरा चित नहीं हटता इस विषये मैं निश्चय कर के जानता हूँ कि कोई देव अर्थात् अन्तर्यामी मेरे हृदय देह में विराजमान हैं यह देव मेरे चित्त विषय जैसी प्रेरणा करता है वैसा ही मुझ को करना पड़ता है।

प्रश्न—महाराज सर्व जीव परमात्माकी प्रेरणानुसार ही चेष्टा करते हैं तो परमेश्वर में भी पक्षपातादि दोषारोप करना पड़ेगा। क्यों कि परमेश्वर किसी को तो अच्छी प्रेरणा द्वारा सुख का भागी बना देते हैं और किसी के हृदय में बुरी प्रेरणा करके अथाह दुख में डुबा देते हैं। और शास्त्र वेत्ता विद्वान् तो परमेश्वर को न्यायाधीश, दयालु

गुहा में विराज मान होकर प्रेरणा करता है, परन्तु प्राणि के अनुसार ही प्रेरणा करता है, अपनी इच्छा से नहीं करता पाहते पक्ष पात रहित है। और जैसा जिस जीवका पूर्व जन्म संग्रह किया हुआ कर्म है उसी के मुताबिक उस जीवको फल करने से ही परमात्मामें न्यायाधीश पना सिद्ध होता है और जिस का फल उस समय पक कर फल देने के सन्मुख होवैगा तो उसी समय ही फल दान करने कर के अथवा वेदादि द्वारा शुभ की हेतु उपदेश करने करके ईश्वर में दयालुता भी सिद्ध होती इस प्रकार एक ही ईश्वर में प्रेरकता और न्यायाधीशता और दयालुता तीनों ही लक्षण घट सक्ते हैं।

प्रश्न—महाराज यदि वारंवार सागी ही नाटक हुआ करता तो फिर मनुष्योंको इष्ट पदार्थों की प्राप्ति के लिये कोई पुरुषार्थ करने की जरूरत ही नहीं रहेगी क्यों कि कोई पुरुषार्थ करो या मत करो बातो तो वही होवेगी जो पहिले नाटक में हो चुकी थी इस लिये सागी नाटकके मानने से पुरुषार्थ में निष्फलता रूपी दोष आता है जो शास्त्रों के विरुद्ध है।

उत्तर—प्रियजनों! पुरुषार्थ कोई फल रूप नहीं है किन्तु पुरुषार्थ तो केवल फलका द्योतक (चिन्ह है) अर्थात् फलको जताने वाला है और विद्वान लोग चिन्ह को देख कर ही अनुमान द्वारा भावी बात का अनुभव किया करते हैं।

दृष्टान्त—जैसे जब पूरब बादलों को देख कर के ही अनुमान होता है कि बारिष आने वाली है क्यों कि बादल बारिष का द्योतक (चिन्ह) है जब बादलादि बारिष के चिन्ह ही नहीं दीखते तो बारिष का होना असम्भव है।

दृष्टान्त—तैसे ही पुरुषार्थ करने वाले मनुष्यों को देख कर के

अनुमान होता है कि पूर्ण पुरुषार्थ होने से हम लोगों को इष्ट फल की प्राप्ति जरूर होयेगी और जो मनुष्य पुरुषार्थ हीन है उस के लिये इष्ट फल प्राप्ति की शंका भी नहीं होती।

इन से यह सिद्ध होता है कि जिस पुरुष को इष्ट फल की प्राप्त पूर्व नाटक में हुई है और अब होने वाली है उस मनुष्य की बुद्धि में तो पुरुषार्थ करने की ही प्रेरणा हुआ करती है और जिस मनुष्य को पहिले नाटक में इष्ट फल नहीं प्राप्त हुआ है और अब भी प्राप्त होने वाला नहीं है उस की पुरुषार्थ करने में रुचि भी नहीं होती इस लिये सागी नाटक को मान कर के पुरुषार्थ में किसी प्रकार की शिथलता नहीं आसक्ती।

प्र० महाराज सागी की सागी चेष्टा व नाटक का होना तो आपने अच्छी तरह से सिद्ध कर दिया और हम लोगों की बुद्धि में भी ठीक जच गया। परन्तु आप कहते हैं कि पांच पांच सौ वर्ष से यह सागी नाटक हुआ करता है सो पांच पांच सौ वर्ष से इस नाटक का होना। अभी तक हमारी बुद्धि में नहीं जचा इस लिये कृपया किसी प्रमाण के जरिये से यह भी हमारी बुद्धि में ठीक जचा दीजिये जिस से कि इसी विषय में भी हमारे चित्त विषय कोई शंका न रहे।

उत्तर—प्रिय जनों पांच पांच सौ वर्ष के सागी नाटक का होना गणित द्वारा इस प्रकार सिद्ध होता है सो चित्त देकर सुनिये।

महाराज ब्रह्माजी के एक दिन में मनुष्योंका चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष होता है जिसमें बारह करोड़ वर्ष जगतकी रचनायत्नामें लग चुकने पर शेष चार अरब बीस करोड़ वर्ष रहते हैं यह हम पहिले ही कह चुके थे सो आपको स्मरण ही होगा। इन चार अरब बीस करोड़ वर्षोंमें चोरासी लाख जन्म होना तो पांच पांच सौ वर्ष से हो एक एक जन्मका होना सिद्ध होता है क्योंकि चार

गुहा में विराज मान होकर प्रेरणा करता है, परन्तु प्रारब्ध के अनुसार ही प्रेरणा करता है, अपनी इच्छा से नहीं करता इसवास्ते पक्ष पात रहित है। और जैसा जिस जीवका पूर्व जन्मों में संग्रह किया हुआ कर्म है उसी के मुताबिक उस जीवको फल प्रदान करने से ही परमात्मामें न्यायाधीश पना सिद्ध होता है और जिस कर्म का फल उस समय पक कर फल देने के सन्मुख होवैगा तो ईश्वर उसी समय ही फल दान करने कर के अथवा वेदादि द्वारा शुभ कर्मों के हेतु उपदेश करने करके ईश्वर में दयालुता भी सिद्ध होती है। इस प्रकार यक ही ईश्वर में प्रेरकता और न्यायाधीशता और दयालुता तीनों ही लक्षण घट सक्ते हैं।

प्रश्न—महाराज यदि बारंबार सागी ही नाटक हुआ करता है तो फिर मनुष्योंको इष्ट पदार्थों की प्राप्ति के लिये कोई पुरुषार्थ करने की जरूरत ही नहीं रहेगी क्यों कि कोई पुरुषार्थ करो या मत करो बातों तो वही होवेगी जो पहिले नाटक में हो चुकी थी इस लिये सागी नाटकके मानने से पुरुषार्थ में शिथलता रूपी दोष आता है सो शास्त्रों के विरुद्ध है।

उत्तर—मित्रजनों! पुरुषार्थ कोई फल रूप नहीं है किन्तु पुरुषार्थ तो केवल फलका द्योतक (चिन्ह है) अर्थात् फलको जताने वाला है और विद्वान लोग चिन्ह को देख कर ही अनुमान द्वारा भावी बात का अनुभव किया करते हैं।

दृष्टान्त—जैसे जल पूरत बादलों को देख कर के ही अनुमान होता है कि बारिष आने वाली है क्यों कि बादल बारिष का द्योतक (चिन्ह) है जब बादलादि बारिष के चिन्ह ही नहीं दीखते तो बारिष का होना असम्भव है।

दृष्टान्त—तैसे ही पुरुषार्थ करने वाले मनुष्यों को देख कर के

ानुमान होता है कि पूर्ण पुरुषार्थ होने से इन लोगों को इष्ट
फल की प्राप्ति ज़रूर होवेगी और जो मनुष्य पुरुषार्थ हीन हैं उस
के लिये इष्ट फल प्राप्ति की शंका भी नहीं होती।

इन से यह सिद्ध होता है कि जिस पुरुष को इष्ट फल की प्राप्ति
पूर्व नाटक में हुई है और अब होने वाली है उस मनुष्य की बुद्धि में
तो पुरुषार्थ करने की ही प्रेरणा हुआ करती है और जिस मनुष्य
को पहिले नाटक में इष्ट फल नहीं प्राप्त हुआ है और अब भी प्राप्त
होने वाला नहीं है उस की पुरुषार्थ करने में रुचि भी नहीं होती इस
लिये साभी नाटक को मान कर के पुरुषार्थ में किसी प्रकार की
शिथिलता नहीं आसक्ती।

प्र० महाराज साभी की साभी चेष्टा व नाटक का होना तो आपने
अच्छी तरह से सिद्ध कर दिया और हम लोगों की बुद्धि में भी ठीक
जच गया। परन्तु आप कहते हैं कि पांच पांच सौ वर्ष से यह
साभी नाटक हुआ करता है सो पांच पांच सौ वर्ष से इस नाटक
का होना। अभी तक हमारी बुद्धि में नहीं जचा इस लिये कृपया
किसी प्रमाण के ज़रिये से यह भी हमारी बुद्धि में ठीक जचा दीजिये
जिस से कि इसी विषय में भी हमारे चित्त विषय कोई शंका न रहे।

उत्तर—प्रिय जनो पांच पांच सौ वर्ष से साभी नाटक का होना
गणित द्वारा इस प्रकार सिद्ध होता है सो चित्त देकर सुनिये।

महाराज ब्रह्माजी के एक दिन में मनुष्यों का चार अरब बत्तीस
करोड़ वर्ष होता है जिसमें बारह करोड़ वर्ष जगत की रचनावस्था में
लग चुकने पर शेष चार अरब बीस करोड़ वर्ष रहते हैं यह हम
पहिले ही कह चुके थे सो आपको स्मरण ही होगा। इन चार
अरब बीस करोड़ वर्षों में चौरासी लाख जन्म होना तो पांच पांच
सौ वर्ष से ही एक एक जन्म का होना सिद्ध होता है क्योंकि चार

गुहा में विराज मान होकर प्रेरणा करता है, परन्तु प्रारब्ध के अनुसार ही प्रेरणा करता है, अपनी इच्छा से नहीं करता। वास्ते पक्ष पात रहित है। और जैसा जिस जीवका पूर्व जन्मों संग्रह किया हुआ कर्म है उसी के मुताबिक उस जीवको फलप्र करने से ही परमात्मामें न्यायाधीश पना सिद्ध होता है और जिस का फल उस समय पक कर फल देने के सन्मुख होवेगा तो उसी समय ही फल दान करने कर के अथवा वेदादि द्वारा शुभ कों हेतु उपदेश करने करके ईश्वर में दयालुता भी सिद्ध होती इस प्रकार यक ही ईश्वर में प्रेरकता और न्यायाधीशता दयालुता तीनों ही लक्षण घट सके हैं।

प्रश्न—महाराज यदि वारंवार सागी ही नाटक हुआ करता तो फिर मनुष्योंको इष्ट पदार्थों की प्राप्ति के लिये कोई पुरुषार्थ करने की जरूरत ही नहीं रहेगी क्यों कि कोई पुरुषार्थ करो या मत करो बातों तो वही होवेगी जो पहिले नाटक में हो चुकी थी इस लिये सागी नाटकके मानने से पुरुषार्थ में शिथलता रूपी दोष आता है व शास्त्रों के विरुद्ध है।

उत्तर—प्रियवरों! पुरुषार्थ कोई फल रूप नहीं है किन्तु पुरुषार्थ तो केवल फलका द्योतक (चिन्ह है) अर्थात फलको जताने वाला है और विद्वान लोग चिन्ह को देख कर ही अनुमान द्वारा भावी बात का अनुमान किया करते हैं।

दृष्टान्त—जैसे जल पूरत बादलों को देख कर के ही अनुमान होता है कि बारिष आने वाली है क्यों कि बादल बारिष का द्योतक (चिन्ह) है जब बादलादि बारिष के चिन्ह ही नहीं दीखते तो बारिष का होना असम्भव है।

दृष्टान्त—जैसे ही पुरुषार्थ करने वाले मनुष्यों को देख कर के

है, क्योंकि पुराणादिकमें कहीं ऐसा भी लेख सुनने में आता है कि त्रेतयुगमें मनुष्योंकी एक लाख वर्षकी आयु होती थी, सो ही त्रेता युगमें दस हजार, द्वापर में एक हजार और कलियुगमें एक सौ वर्ष की रह गई।

इसी लेखके अनुसार ही श्रीवालमीकजी ऋषिने रामायणमें कहा है कि श्रीरामचंद्रजीने त्रेता युगमें अवतार होनेके कारण ग्यारह हजार वर्ष राज्य किया था, और आप कहते हैं कि सर्व युगोंके सर्व पृथ्वियोंके मनुष्य पांच २ सौ वर्षसे दूसरी पृथ्वी पर जाय कर जन्मते हैं अर्थात् पांच सौ वर्षसे अधिक आयु कोई भी किसी समयमें नहीं पाता इसलिये शास्त्रों से विरुद्ध होने करके आपका कलपा हुवा सारा नाटक कपोल कल्पितसा ज्ञात होता है, किन्तु मानने योग्य विदित नहीं होता।

उत्तर—सज्जनों! क्या तुम लोगोंने मेरे वाक्योंको शास्त्र विरुद्ध मन घड़ित गपोड़ ही समझ रक्खे हैं। नहीं, नहीं, ऐसा समझना तुम लोगोंकी बिलकुल भूल है क्योंकि आज तक जो कुछ मैंने तुम लोगोंके सामने कहा है सो अपनी बुद्धिके अनुसार शास्त्रोंके आशयको समझ कर ही कहा है। इस लिये मेरे वचनोंमें अविश्वास करना योग्य नहीं है। अब मैं इस विषय पर सत शास्त्रोंके आशय को आप लोगोंके सामने प्रकाशित करता हूं जिस से विदित हो जायगा कि सत युगादिकनमें मनुष्योंकी कितनी कितनी आयु हुआ करती है।

आप लोग भी अच्छी तरह से ध्यान देकर सुनिये जिससे कि, आप लोगों के चित्त विषय उत्पन्न हुई जो अपट शंका उसकी निवृत्ति होकर मेरे कहे हुए वचनोंमें पूर्ण विश्वास उत्पन्न हो जाय।

श्रुति स्मृती ममै वाइ ॥

है, क्योंकि पुराणादिकनमें कहीं ऐसा भी लेख सुनने में आता है कि सतयुगमें मनुष्योंकी एक लाख वर्षकी आयु होती थी, सो ही त्रेता युगमें दस हजार, द्वापर में एक हजार और कलियुगमें एक सौ वर्ष की रह गई।

इसी लेखके अनुसार ही श्रीवाल्मीकजी ऋषिने रामायणमें कहा है कि श्रीरामचंद्रजीने त्रेता युगमें अवतार होनेके कारण ग्यारह हजार वर्ष राज्य किया था, और आप कहते हैं कि सर्व युगोंके सर्व पृथिवीके मनुष्य पांच २ सौ वर्षसे दूसरी पृथ्वी पर जाय कर जन्मते हैं अर्थात् पांच सौ वर्षसे अधिक आयु कोई भी किसी समयमें नहीं पाता इसलिये शास्त्रों से विरुद्ध होने करके आपका कहना हुआ सारा नाटक कपोल कल्पितसा ज्ञात होता है, किन्तु मानने योग्य विदित नहीं होता।

उत्तर—सज्जनों! क्या तुम लोगोंने मेरे वाक्योंको शास्त्र विरुद्ध मन गढ़ित गपोड़े ही समझ रक्खे हैं। नहीं, नहीं, ऐसा समझना तुम लोगोंकी बिलकुल भूल है क्योंकि आज तक जो कुछ मैंने तुम लोगोंके सामने कहा है सो अपनी बुद्धिके अनुसार शास्त्रोंके आशयको समझ कर ही कहा है। इस लिये मेरे वचनोंमें अविश्वास करना योग्य नहीं है। अब मैं इस विषय पर सब शास्त्रोंके आशय को आप लोगोंके सामने प्रकाशित करता हूँ जिस से विदित हो जायगा कि सत युगादिकनमें मनुष्योंकी कितनी कितनी आयु हुआ करती है।

आप लोग भी अच्छी तरह से ध्यान देकर सुनिये जिससे कि, आप लोगों के चित्त विषे उत्पन्न हुई जो शङ्का हैं सबकी निवृत्ति होकर मेरे कहे हुए वचनोंमें पूर्ण विश्वास उत्पन्न हो जाय।

इति दशमो मनो वाद ॥

अरब बीस करोड़ (४,२०००००००) को चौरासी लाख (८४०००००) का भाग निकालने से पांच सौ (५००) ही मिलेगा अतः इसी हिसाब से ही पांच पांच सौ वर्ष से पुनर्जन्म होना सिद्ध होता है और जो बात हिसाब से सिद्ध होती है वह बात यद्यपि शास्त्रों में स्पष्ट रीति से न भी मिले तौ भी उस को प्रत्यक्ष प्रमाण के सदृश सिद्ध ही समझनी चाहिये क्यों कि बहुतसी बातें शास्त्र में स्पष्ट रीति से नहीं मिलती केवल विचार द्वारा ही सिद्ध की जाती हैं। इसी लिये श्रवण के पश्चात् मनन करने की शास्त्र आज्ञा देते हैं मनन विचार दोनों पर्याय शब्द अर्थात् एक अर्थ वाचक है। और जैसे किसीने पूछा कि चौरासी लाखको पांच सौ का गुणा देने से कितना होता है। तो इसका जवाब देनेके लिये कोई भी विद्वान् शास्त्रोंका पन्ना नहीं सभालता, क्यों कि किसी शास्त्र में भी इसका जवाब स्पष्ट रीति से लिखा हुआ नहीं मिलता, किन्तु गणित द्वारा विचार से ही इसका जवाब देता है कि चार अरब बीस करोड़ होवेगा। और इस जवाबको शास्त्रोंमें नहीं मिलने पर भी सब लोग मंजूर करते हैं वैसे ही गणित रूपी विचार से सिद्ध हुआ पांच २ सौ वर्षो से एक एक नाटक का होना अर्थात् पुनर्जन्म होना किसी शास्त्र में स्पष्ट रीति से नहीं भी मिले तौ भी मंजूर करने योग्य है क्योंकि गणित (ज्योतिष) वेदों के षट अंगों में से एक अंग है, होने करके वेदोंके सदृश ही मान्य है, इसलिये और कोई प्रमाण इस विषय में ढूढने की आवश्यकता नहीं है।

प्रश्न—महाराज! कल्प तक के समयमें चौरासी लाख जन्मोंके होने से तो हिसाब द्वारा पांच २ सौ वर्षों से पुनर्जन्म होना ठीक मिलता है, परन्तु सर्व समयोंके सर्व मनुष्योंका पांच २ सौ वर्ष से ही पुनर्जन्म होता है, ऐसा मानना शास्त्रों से विरुद्ध मालूम पड़ता

है, क्योंकि पुराणादिकनमें कहीं ऐसा भी लेख सुनने में आता है कि सतयुगमें मनुष्योंकी एक लाख वर्षकी आयु होती थी, सो ही त्रेता युगमें दस हजार, द्वापर में एक हजार और कलियुगमें एक सौ वर्ष की रह गई।

इसी लेखके अनुसार ही श्रीवाल्मीकजी ऋषिने रामायणमें कहा है कि श्रीरामचंद्रजीने त्रेता युगमें अवतार होनेके कारण ग्यारह हजार वर्ष राज्य किया था, और आप कहते हैं कि सर्व युगोंके सर्व पृथ्वियोंके मनुष्य पांच २ सौ वर्षसे दूसरी पृथ्वी पर जाय कर जन्मते हैं अर्थात् पांच सौ वर्षसे अधिक आयु कोई भी किसी समयमें नहीं पाता इसलिये शास्त्रों से विरुद्ध होने करके आपका कहना हुवा सारी नाटक कपोल कल्पितसा ज्ञात होता है, किन्तु मानने योग्य विदित नहीं होता।

उत्तर—सज्जनों! क्या तुम लोगोंने मेरे वाक्योंको शास्त्र विरुद्ध मन गढ़ित गपोड़ ही समझ रक्खे हैं। नहीं, नहीं, ऐसा समझना तुम लोगोंकी बिलकुल भूल है क्योंकि आज तक जो कुछ मैंने तुम लोगोंके सामने कहा है सो अपनी बुद्धिके अनुसार शास्त्रोंके आशयको समझ कर ही कहा है। इस लिये मेरे वचनोंमें अविश्वास करना योग्य नहीं है। अब मैं इस विषय पर उन शास्त्रोंके आशय को आप लोगोंके सामने प्रकाशित करता हूं जिस से विदित हो जायगा कि सत युगादिकनमें मनुष्योंकी कितनी कितनी आयु हुआ करती है।

आप लोग भी अच्छी तरह से ध्यान देकर सुनिये जिससे कि, आप लोगों के चित्त विषय स्पष्ट हुई जो शङ्का होंगी सबकी निवृत्ति होकर मेरे कहे हुए वचनोंमें पूर्ण विश्वास स्थापित हो जाय।

इति इक्कीसवां प्रश्न समाप्त ॥

धी वेद भगवान्‌की इस श्रुति सर्वांतर्यामी सर्व शक्ति मान् ईश्वर कहते हैं कि, श्रुति और स्मृती दोनों ही मेरी आज्ञा है अर्थात् हुक्म है। यहाँ पर यह शङ्का होती है कि दो श्रुतियों में परस्पर विरोध होवे या श्रुति और स्मृती में परस्पर विरोध होवे अर्थात् श्रुति अर्थ से विपरीत स्मृति का मतलब निकलता होवे वहाँ पर किसका वचन ग्रहण करना और किसका वचन त्यागना चाहिये। इस शंका के निवारणार्थ हमारे परम पूज्य महर्षियोंने यह निरणय किया है।

श्रुति द्वैधंतु यत्रस्यात् तत्र धर्मा वुभौ स्मृतौ ॥
विरोधत्वेन पेक्षं स्यादसति ह्यनु मान के ॥

अर्थात् जहाँ दो श्रुतियों में विरोध प्रतीत होवे वहां दोनों ही धर्म समझना चाहिये, और जहां श्रुति और स्मृति के वचनों में विरोध होवे वहाँ श्रुति वचनको ग्रहण करके स्मृती के वचनको त्याग देना चाहिये, क्यों कि श्रुति से विरुद्ध स्मृति के वचन मान नहीं होता और जब स्मृति और पुराणों के वचनोंमें परस्पर विरोध होवे तो स्मृतीके वचनों को मान्य और पुराणों के वचनोंको अमान्य समझना चाहिए क्यों कि स्मृतीके विरुद्ध पुराणोंका वचन मानने योग्य नहीं होते। इन वाक्यों से यह सिद्ध होता है कि पुराणोंसे तो स्मृती बलिष्ठ है और स्मृती से श्रुति बलिष्ट है। अब सुनिये श्रुति और स्मृतीके तो वचन ऐसे कहीं भी देखने में नहीं आये कि सतयुग में मनुष्योंकी आयु एक लाख वा त्रेतायुगमें एक हजार वर्ष की होती थी। किन्तु वेदों वा उपनिषदोंकी श्रुतियां अथवा आर्ष पुस्तकों से तो इनसे विरुद्ध चारों युगों में मनुष्यों की आयु

पश्येम शरदः शतं जीवेमशरदः शतम् [यजुः]
पधीन्धानास्त्वा शतिहिमा ऋधमे—
शतसंवत्सरं दीर्घमायुः ऋक्-शतायुर्वै पुरुषः कठ०
एति जीवन्त मानन्दो नरं वर्षशः तादपि।
वाल्मी-युद्ध कांड सीता वचन।

और ईशा वास्योपनिषद्में लिखा है कि मनुष्य कर्म कर्ता हुआ ही सौ वर्षजीनेकी इच्छा करे ऐसे कर्म करता हुआ मनुष्यको कर्मोंके बन्धनमें आना नहीं होता इससे दूसरा प्रकार बन्धन रूप कर्मसे छूटनेका नहीं है और कठ उपनिषद्में यमराज और नचिकेताका संवाद है वहां यमराज नचि केताके वैराग्यकी परीक्षा करते हुए कहते हैं कि तुम मेरे से आत्म विद्या मत पूछो और इस आत्म विद्या के बदले तेरेको सोलह १६ वरदान देता हूं जो यह बहुत उत्तम हैं उनको ले कर प्रसन्न हो जावो वे सोलह वर यह हैं। सौ वर्ष की आयु वाले—पुत्र, पौत्र, बहुत पशु, हस्ती, स्वर्ण, अश्व, मंडलाधिपत्य, चिरं जीवन, धन, अपनी स्थिर जीविका, चक्रवर्तिराज्य, मनुष्य लोक में काम प्राप्ति, रत्न, कामना, स्त्रियाँ, रथों, नृत्य, वादित्र, विषय, कुशल पुण्य यह १६ वर भोग जो तुम्हारे आनन्दके हेतु हैं न कि आत्म विद्या इस पर महात्मा नचि केताने इन सोलह वरोंको तुच्छ समझ कर नहीं लिये किन्तु आत्म-विद्या को ही यमराज से मांगे। और संध्या करते समय भी द्विज प्रमाण से १०० वर्ष जीने की ही प्रार्थना करते। अब विचारना चाहिये कि वेदक ग्रंथों से तो चारों युगों के लिये केवल १०० वर्ष की ही आयु सिद्ध होती है, तो फिर सतयुग में एक लक्ष त्रेतामें दश हजार वर्षकी आयु का परमाण होता सो वेदोंमें देखा वर्णन कदापि नहीं होता कि कर्म कर्ता हुआ पुरुष सौ वर्ष जीनेकी इच्छा करे।

फिर भी सुनिये यमराज ने नचिकेता को सब से उत्तम वर समझ कर ही सौ वर्ष जीने वाला पुत्र पौत्र देना कहाया। यदि उस समय हजारों वर्ष की आयु होती तो क्या नचिकेता इसे वर समझता और यमराज वर देने के लिये कहता कदापि नहीं क्यों कि इसी समय में कोई मूर्ख भी ऐसी बेहूदी आशीर्वाद किसी को नहीं देता कि तुम्हारे दस वर्ष जीने वाला पुत्र हो। तो फिर जो यमराज जैसा विद्वान् और नचिकेता जैसे महर्षि में ऐसी वार्ता जो कि उस समय मनुष्य की आयु हजारों वर्षों की होती तो होनी असम्भव थी इस से स्पष्ट ज्ञान होता है कि मनुष्योंकी आयु चारों युगों में सौ वर्ष की ही होती है। और युग युग के प्रति अलहदा २ भेद तो होता ही नहीं किन्तु चारों युगों में यही भेद रहता है जो इस समय उपस्थित है और अन्यथा का मंत्र भी जो ईश्वर से १०० वर्ष जीने की प्रार्थना की जाती है चारों युगों में यही रहता है। इस लिये श्रुति प्रमाण से तो हर समय सौ ही वर्ष की आयु सिद्ध होती है।

कदाचित कोई कहे कि चारों युगों में आयुका प्रमाण तो सौ ही वर्ष का था परन्तु अन्य युगों में योगाभ्यास करके आयु बढ़ा कर हजारों वर्षों तक जीते रहे थे। सो वार्ता बन नहीं सकी क्यों कि किसी समय में भी सारी सृष्टि के मनुष्य योगाभ्यासी नहीं हो सक्ते अलबत्ता इतना फर्क तो हो सक्ता है कि इस समय कोटी मनुष्यों में एक या दो योगी होंगे और सतयुगादिकों में सौ हजार एक मनुष्य योगी होता होगा। बस इतने ही समय का फेर हो सक्ता है यह नहीं हो सक्ता कि उस समय सब ही योगाभ्यासी थे। और यह भी समझ लीजिये कि योग कर के इतनी आयु भी नहीं बढ़ सक्ती कि एक सौ की जगह हजारों वर्ष जीते रह सकें। क्यों कि शास्त्रोंमें इन स्थूल शरीरों की स्थिती प्रारब्ध कर्मके ही आश्रितमानी

है। सो प्रारब्ध कर्म शरीरकी उत्पत्तिकाल में बन चुकता है और फिर योग करके घटवेध नहीं सकता किन्तु प्रारब्ध तो भोग करके ही क्षीण होता है। और इनके क्षीण होनेसे शरीर भी नष्ट हो जाता है। इस लिये योग करके इतना आयुका बढ़ाना भी तो मानना योग्य नहीं है। जो कि एक सो वर्षका जुग है हजारों वर्ष तक जीता रहा। कदाचित कोई कहे कि सो वर्षकी आयुका तो एक सामान्य संकेत है अर्थात् इन से तो केवल पूरी आयु पानेका तात्पर्य है। यह नहीं कि चारों युगोंमें केवल सो ही वर्षकी आयु होती है। किन्तु आयु तो सतयुगमें एक लाख और त्रेतामें दस हजार वर्षकी होती है। ऐसा भी कहना ठीक नहीं क्यों कि मनुमें साफ लिखा है सो सुनो व सुनिये। स्मृतिके वचन भी सुनिये

श्लोक—

आरोगाः सर्व सिद्धार्थाश्चतुर्वर्ष शतायुष।
कृत त्रेतादिषु ह्येषामायुर्ह्रसति पादशः॥

प्रथम अध्याय श्लोक ८

अर्थ—सतयुगमें धर्मके प्रभाव से सब मनुष्य सम्पूर्ण सिद्धियों वाले और चारसौ ४०० वर्षकी आयु वाले होते भये और यह आयु त्रेता, आदि युगोंमें एक एक पाद हीन होती गई जैसे त्रेतामें तीन सौ (३००) द्वापरमें दोय सौ (२००) कलियुगमें एक सो (१००) वर्षकी रह गई। इस मनुस्मृतिके वचन से ही हजारों वर्षकी आयुका मानना खंडन होता है और आप दोनोंने पुराणादिकोंमें हजारों वर्षकी आयु सुनि सो प्रथम तो श्रुति स्मृतिके विरुद्ध किसीका वचन माना नहीं जाता। इसके बारेमें

पहिले कह चुका हूँ। और दूसरी यह भी बात है कि शास्त्रोंका आशय भी तो गूढ़ होता है और तीसरे संख्याका तात्पर्य भी कोई अन्य हो सक्ता है चौथे रोचक, भयानक और यथार्थ भेद करके शास्त्रों के वचन भी तीन प्रकारके होते हैं। सो विद्वान जानते ही हैं। इस लिये पुराणोक्त आयु के बारेमें, मैं कुछ नहीं कह सकता कि हजारों वर्षोंकी आयु किसतरह लिखी है। और जो श्रीरामचन्द्रजी महाराजका ११००० हजार ग्यारे वर्ष इस भूमि पर विराजना सुना जाता है। सो उसका भी कुछ और भी तात्पर्य निकलता होगा। क्योंकि रामायण में यह भी तो लिखा है कि सौ योजनके समुद्र पर सेतु बाँधाया। वही सेतु आज तक उपस्थित है। इस को इस समय सोमील तककी भी लम्बाई नहीं है जिसको कि उस समय सौ योजन अर्थात चारसौ कोष कहते थे। जिस तरह कोषों की माप में उस समय से इस समयमें फर्क है उसी तरह से वर्षोंका भी कोई अन्य ही संकेत होगा।

अथवा, इस समय वैवस्वत मन्वन्तरमें अट्ठाईस वीं चौकड़ी वर्तमान है। और हरेक त्रेतायुग में श्रीरामचन्द्रजीका अवतार हुआ करते हैं तो इस हिसाब से इस मनवन्तर में अट्ठाईस बार महाराजके इस भूमी पर प्रादुर भाव हो चुका उन सर्व अट्ठाईसो बार की समय का ग्यारे हजार वर्ष समझा जायँ तो एक २ बार के अवतार में ३९२ वर्ष के समीप महाराज का इस भूमंडल पर विराजना पाया जाता है यदि ऐसा ही है तो मनुका प्रमाण ही ठीक मिलता है।

कदाचित कोई कहे कि मनु ने तो त्रेता युग में ३०० वर्ष की आयुका प्रमाण दिया है। और महाराज ३९२ वर्ष अर्थात् ९२ वर्ष अधिक किस प्रकार रह सके।

यह भी शंका ठीक नहीं क्योंकि पूर्ण आयु तो कोई नहीं पा

पहिले कह चुका हूँ। और दूसरी यह भी बात है कि शास्त्रोंका आशय भी तो गूढ़ होता है और तीसरे संख्याका तात्पर्य भी कोई अन्य हो सक्ता है चोथे रोचक, भयानक और यथार्थ भेद करके शास्त्रों के वचन भी तीन प्रकारके होते हैं। सो विद्वान जानते ही हैं इस लिये पुराणो क्त आयु के बारेमें, मैं कुछ नहीं कह सकता कि हजारों वर्षोंकी आयु किसतरह लिखी है। और जो श्रीरामचन्द्रजी महाराजका ११००० हजार इग्यारे वर्ष इस भूमि पर विराजना सुना जाता है। सो, उसका भी कुछ और भी तात्पर्य निकलता होगा। क्योंकि रामायण में यह भी तो लिखा है कि सो योजनके समुद्र पर सेतु बाँधाथा। वही सेतु आज तक उपस्थित है। इस की इस समय सोमील तककी भी लम्बाई नहीं है जिसको कि उस समय सो योजन अर्थात चारसो कोष कहते थे। जिस तरह कोषों की माप में उस समय से इस समयमें फर्क है उसी तरह से वर्षोंका भी कोई अन्य ही संकेत होगा।

अथवा, इस समय वैवस्वत मनवन्तरमें अठाईस वीं चौकड़ी वर्तमान है। और हरेक त्रेतायुग में श्रीरामचन्द्रजीका अवतार हुआ करते हैं तो इस हिसाब से इस मनवन्तर में अठाईस बार महाराजके इस भूमी पर प्रादुर भाव हो चुका उन सर्व अठाईसो बार की समय का इग्यारे हजार वर्ष समझा जाये तो एक २ बार के अवतार में ३९३ वर्ष के समीप महाराज का इस भूमंडल पर विराजना पाया जाताहे यदि ऐसा ही है तो मनूका प्रमाण ही ठीक मिलता है।

कदाचित कोई कहे कि मनू के तो त्रेता युग में ३०० वर्ष की आयुका प्रमाण मिलता है। और महाराज ३९३ वर्ष अर्थात् ९३ वर्ष अधिक किस प्रकार रह सके।

महाराज! इनका कौनसा हिसाब है सो अभी बतलाइये, क्यों कि आप जैसे महत्पुरुषोंके समागम होने से ही गूढ़ विषय समझमें आया करते हैं।

उत्तर—सुनो भाईयो यह तो ऐसी कोई गूढ़वार्ता नहीं है जो तुम्हारी समझमें न आसके क्यों कि शास्त्रोंमें सतयुगका प्रमाण सतरह लाख अठाईस हजार (१७२८०००) वर्षोंका कहा है जिस को पांचसोका भाग निकालनेसे तीन हजार चारसो छप्पन (३४५६) होता है अर्थात् सतयुगके सर्व वर्षोंमें पांच पांचसो वर्षोंका एक एक भाग किया जाय तो सतयुगका कुल तीन हजार चारसो छप्पन ही भाग होवेगा सोई एक २ भाग एक २ पृथ्वी पर उपस्थित होने से ३४५६ ही पृथ्वीयों पर सतयुगका होना सिद्ध होता है। इसी तरह त्रेता युगका प्रमाण बारह लाख छानमें हजार (१२९६०००) वर्षोंका है।

उसको पांचसो का भाग निकालने से दो हजार पांचसो बानमें (२५९२) ही मिलेगा बस इन दो हजार पांचसो बानमें (२५९२) पृथ्वीयों पर त्रेता युग हर समय रहा करता है। द्वापर युगका प्रमाण आठ लाख चौसठ हजार (८६४०००) वर्षोंका है जिस को पांचसोका भाग निकालनेसे एक हजार सातसो अट्टाईस (१७२८) ही मिलेगा इससे आप समझ सके हैं कि एक हजार सातसो अट्टाइस पृथिवयों पर द्वापर और चार लाख बत्तीस हजार (४३२०००) वर्षोंका कलियुगका प्रमाण है इसको पांचसोका भाग निकालने से आठसो चौसट (८६४) ही मिलेगा इसलिये आठसो चौसट पृथ्वीयों पर ही कलियुगका रहना सिद्ध होता है। इस तरह हिसाबकी राह से इतनी २ पृथिवयों पर अमुक २ युगका हर समय रहना साबित

(८६४०) पृथ्वीयोंका होना हिसाब द्वारा इस प्रकार सिद्ध होता है कि एक चौकड़ीमें मनुष्योंके तेतालीशलाख बीस हजार (४३, २००००) वर्ष होता है और पांच पांच सौ वर्षका एक २ नाटक होता है इस लिये इनको पांच सौ का भाग निकालना चाहिये। अब तेतालिश लाख बीस हजार (४३, २००००) वर्षोंको पांच सौ का भाग निकाला तो आठहजार छसौ चालीस (८६४०) ही मिलेंगी बस इतनी ही पृथ्वीयां है क्योंकि एक चौकड़ी के पश्चात ही सारी पृथ्वी पर सारी समय आजाया करती है अर्थात् एक चौकड़ीके बाद फिर इसी पृथ्वी पर यही समय आजायगी जिसमें की तुम्हारे एवं महाराजाधिराज के कर कमलन से श्रीजयन्ती महोत्सव का होना तत पश्चात् तुम्हारा हमारा भी समागम होगा।

यदि आठ हजार छ सौ चालीस (८६४०) से कम ज्यादी पृथ्वीयों को माना जाय तो एक चौकड़ी के बाद सारी समय का आना भी ठीक नहीं मिलता और एक चौकड़ी के पश्चात् सारी समयका आना नहीं मानना शास्त्रों से विरुद्ध है इस लिये आठहजार छसौ चालीस (८६४०) ही पृथ्वीयाँ इस मृत्युलोक (मृत्युलोक) में मानने योग्य है।

प्र०—महाराज इस मतलब को तो हम खूब समझ गये परन्तु एक और भी बात है जिसको हम अभी तक नहीं समझे सो भी आप कृपा करके समझा दीजिए।

आपने कहा था कि इस समय तीन हजार चार सौ छप्पन (१४-५६) पृथ्वीयों पर तो मनुष्य और दो हजार पांच सौ बावन (२५०,२) पृथ्वीयों पर देव युग, और एक हजार आठ सौ अठारह (१७१८) पृथ्वीयों पर मनुष्य और छ सौ चौरासी (८६४) पृथ्वीयों पर मनुष्य रहा करते हैं।

सो एक सूर्यको अचल मान कर नक्षत्रादि सहित पृथ्वीको चल मानते हैं और कई विद्वान एक पृथ्वीको ही अचल मानते हुये सूर्य को नक्षत्रादि सहित चल मानते हैं। इन दोनोंमें से चाहे जिस एकको चल और दूसरेको अचल मानने से गणितमें किसी प्रकारका फर्क नहीं आता। इस लिये ऐसा भी मान सक्ते हैं कि चारों युग रूपी काल और कालके आश्रित सर्व जीव तो अचल है और ८६४० पृथ्वीयोंका एक गोल चक्कर इस तरह घूमा करते हैं कि पांच सौ वर्षोंमें एक पृथ्वीकी जगह दूसरी पृथ्वी आजाया करती है। अर्थात् (४३२००००) वर्षोंमें इस चक्करका एक गुच्छा पूरा होता है। जैसे ७७८७ नम्बरकी जो यह पृथ्वी है इसकी जगह पांच सो वर्षोंमें ७७८८ नम्बरकी पृथ्वी आ जायगी और आपसमें इन सब पृथ्वीयोंमें जितना बीच है उतना ही बीच हर समय बना रहेगा। ऐसा माना जाय तो भी बहुत ठीक है। क्योंकि कुछ पांच सो वर्षमें सप्तमहर्षियोंका ७७८६ नम्बरकी पृथ्वीके साथ सम्बन्ध होना चाहिये। जिसमें चाहे हम लोग कालके साथ चल कर उस पृथ्वी तक पहुंचे चाहे वो पृथ्वी अपने चक्करके माध्यम से चलती हुई हमारे पास पहुंचे! सज्जन गणों इतना कह कर महात्माने निम्न लिखित सर्व पृथ्वीके चक्करका चारों युगादिकोंके सहित एक नकशा खींच कर सर्व सज्जनोंको अच्छी तरह से समझा दिया तत्पश्चात महात्मा कहने लगे प्रिय जनो इस समय रात्रि अधिक आ चुकी है इस लिये अभी तो आप लोग अपने अपने घरको जाइये मैं भी आराम करना चाहता हूं और फिर भी कुछ पूछनेकी इच्छा हो तो कल इसी समय चले आना जिस वक्त आज तुम लोग आये थे। मैं तुम्हारे संदेहोंका उद्धार कर दूंगा जो तुम्हारे हृदयमें घर किये है।

कोस (८६४०) ही होवेगा जिनमेंसे मैं इन सूत्रोंहीमें वर्णन कर चुका हूं।

यह सब पृथ्वियां आकाशमें ग्रह नक्षत्रोंके समान है और जहां के सूक्ष्म अणुवोंसे मिली हुई वायुके आधार पर ठहरी हुई हैं और एक चक्कर प्रति दिन खाया करती हैं जिससे कि दिन रात हुआ करता है। नक्षत्रादिक भी चलते रहते हैं परन्तु पश्चिम से पूर्वकी ओर जाते हैं और पूर्वसे पश्चिमको जाते हुए दृष्टि पड़ते हैं। सो पृथ्वीके घुमाव से ही ऐसा प्रतीत होता है जैसे कि रेलगाड़ी या जहाजमें चढ़ने वाले यात्रियोंको दूरके मकान या वृक्षादि चलते हुवे नजर आते हैं वास्तवमें वे नहीं चलते वैसे ही पृथ्वीके घुमनेकरके सूर्यादि चलते हुवे नजर आते हैं इस तरह कदापि नहीं चलते।

प्रश्न—महाराज पहले तो आपने पृथ्वियोंको अचल कहा था और युग रूपी कालको या कालके आश्रित सब जीवोंको चल कहा था अब कहते हो कि पृथ्वीयां भी चलती हैं और एक चक्कर हमेशा खाया करती हैं। इस लिये आपके वचनोंमें भी पूर्वा पर विरोध आता है।

तो एक सूर्य्यको अचल मान कर नक्षत्रादि सहित पृथ्वीको चल मानते हैं और कई विद्वान एक पृथ्वीको ही अचल मानते हुये सूर्य को नक्षत्रादि सहित चल मानते हैं। इन दोनोंमें से चाहे जिस एकको चल और दूसरेको अचल मानने से गणितमें किसी प्रकारका फर्क नहीं आता। इस लिये ऐसा भी मान सके हैं कि चारों युग रूपी काल और कालके आश्रित सर्व जीव तो अचल है और ८६४० पृथ्वीयोंका एक गोल चक्कर इस तरह घूमा करते हैं कि पांच सो वर्षोंमें एक पृथ्वीकी जगह दूसरी पृथ्वी आजाया करती है। अर्थात् (४३२००००) वर्षोंमें इस चक्करका एक गुड़का पूरा होता है। जैसे ७७८७ नम्बरकी जो यह पृथ्वी है इसकी जगह पांच सो वर्षोंमें ७७८८ नम्बरकी पृथ्वी आ जायगी और आपसमें इन सब पृथ्वीयोंमें जितना बीच है उतना ही बीच हर समय बना रहेगा। ऐसा माना जाय तो भी बहुत ठीक है। क्योंकि मुख्य पांच सो वर्षमें अवतारादिकोंका ७७८६ नम्बरकी पृथ्वीके साथ सम्बन्ध होना चाहिये। जिसमें चाहे हम लोग कालके साथ चल कर उस पृथ्वी तक पहुँचे चाहे वो पृथ्वी अपने चक्करके आश्रय से चलती हुई हमारे पास पहुँचे! सज्जन गणों इतना कह कर महात्माने निम्न लिखित सर्व पृथ्वीके चक्करका चारों युगादिकोंके सहित एक नक्शा खींच कर सर्व सभ्यगणोंको अच्छी तरह से समझा दिया तत्पश्चात महात्मा कहने लगे प्रिय जनो इस समय रात्रि अधिक आ चुकी है इस लिये अभी तो आप लोग अपने अपने घरको जाइये मैं भी आराम करना चाहता हूं और फिर भी कुछ पूछनेकी इच्छा हो तो कल इसी समय चले आना जिस वक्त आज तुम लोग आये थे। मैं तुम्हारे संशयोंका निवारण भली प्रकार कर दूंगा कि जो तुम्हारे हृदयमें उपस्थित है।

कोस (८६४०) की होवेगी जिसको मैं इन मनुष्योंकी बस्ती कर चुका हूं ।

यह सब पृथिवियां आकाशमें गोल न [illegible] है और यहां के सूक्ष्म अणुवोंसे मिली हुई वायुके आधार पर ठहरी हुई हैं और एक चक्कर प्रति दिन खाया करती है जिससे कि दिन रात हुआ करते हैं। नक्षत्रादिक भी चलते रहते हैं परन्तु पश्चिम से पूर्वको ओर जाते हैं और पूर्वसे पश्चिमको जाते हुए दृष्टि पड़ते हैं। सो पृथ्वीके घुमाव से ही ऐसा प्रतीत होता है जैसे कि रेलगाड़ी वा जहाजमें चढने वाले यात्रियोंको दूरके मकान वा वृक्षादि चलते हुवे नजर आते हैं वास्तवमें वे नहीं चलते तैसे ही पृथ्वीके घुमने करके सूर्यादि चलते हुये नजर आते हैं इस तरह कदापि नहीं चलते।

प्रश्न—महाराज पहले तो आपने पृथिवियोंको अचल कहा था और युग रूपी कालको वा कालके आश्रित सब जीवोंको चल कहा था अब कहते हो कि पृथ्वीयां भी चलती हैं और एक चक्कर हमेशा खाया करती है। इस लिये आपके वचनोंमें भी पूर्वा पर विरोध [illegible] है ।

तो एक सूर्यको अचल मान कर नक्षत्रादि सहित पृथ्वीको चल मानते हैं और कई विद्वान एक पृथ्वीको ही अचल मानते हुवे सूर्य को नक्षत्रादि सहित चल मानते है। इन दोनोंमें से चाहे जिस एकको चल और दूसरेको अचल मानने से गणितमें किसी प्रकारका फर्क नहीं आता। इस लिये ऐसा भी मान सके हैं कि चारों युग रूपी काल और कालके आश्रित सर्व जीव तो अचल है और ८६४० पृथ्वीयोंका एक गोल चक्कर इस तरह घूमा करते हैं कि पांच सौ वर्षोंमें एक पृथ्वीकी जगह दूसरी पृथ्वी आजाया करती है। अर्थात (४३१००००) वर्षोंमें इस चक्करका एक [illegible] पूरा होता है। जैसे ७३८१ नम्बरकी जो यह पृथ्वी है इसकी जगह पांच सौ वर्षोंमें ७३८९ नम्बरकी पृथ्वी आ जायगी और आपसमें इन सब पृथ्वीयोंमें जितना बीच है उतना ही बीच हर समय बना रहेगा। ऐसा माना जाय तो भी बहुत ठीक है। क्योंकि मुख्य पांच सौ वर्षमें असमदादिकोंका ७३८६ नम्बरकी पृथ्वीके साथ सम्बन्ध होना चाहिये। जिसमें चाहे हम लोग कालके साथ चल कर उस पृथ्वी तक पहुंचे चाहे वो पृथ्वी [illegible] चक्करके आश्रय से चलती हुई हमारे पास पहुंचे। [illegible] इतना कह कर महात्माने निम्न लिखित सर्व पृथ्वीके [illegible] चारों युगादिकोंके भी [illegible] नकशा खींच कर सर्व [illegible]
[illegible] महात्मा [illegible]

इतना सुनते ही सभ्यगणोंने प्रसन्नता पूर्वक महाराजको नमस्कार करते हुये दूसरे दिन आनेकी प्रतिज्ञा करके प्रस्थान किया।

इति श्रीअद्भुत विचार ग्रंथे
द्वितीय भाग समाप्तः।

अथ अद्भुत विचार ग्रंथे-
तृतीय भाग प्रारम्भ ।

तीसरे दिन फिर भी सायंकाल करीब ७॥ बजेके सब छात्रगण एकत्रित होकर महात्माके आसन पर आय नमस्कारादि करके इस प्रकार प्रश्न करने लगे महाराज इस ७७८७ सात हजार सात सौ सित्यासी नम्बरकी पृथ्वीके आश्रित रहने वाले अहमदादिकनका ठीक पांच सो वर्षोंमें ७७८६ सात हजार सात सो छियासी नम्बर की पृथ्वी पर जन्म होना आपने माना है । परन्तु इसमें आपकी भूल है क्योंकि जैसे कोई मन ही के लड्डू खाया करते हैं उन लड्डूओंमें मीठेकी कमी कभी नहीं करते वैसे ही आपने भी इन सर्व पृथ्वीयों पर मन चाहित नम्बर लगाया है जिसमें उलटा पन नहीं आने देना चाहिये था। अर्थात ७७८७ नम्बरकी पृथ्वीके जीवोंका पांच सो वर्षोंमें ७७८८ नम्बरकी पृथ्वी पर जन्म मानना वाजिब था लेकिन आपने इसके विरुद्ध ७७८६ नम्बरकी पृथ्वी पर जन्मना किस वास्ते माना।

उत्तर-वाहजी वाह यह तुम क्या करते हो क्या आज तुम लोगोंने भंग तो न पी ली है क्योंकि इस देश निवासी भंगका बहुत ही आदर किया करते हैं इसीके प्रताप से ही तो विदेशियोंके मुंहके सामने ताकते रहते हैं फिर भी विदेशियोंको सभ्य और अपनेको असभ्य समझते हुवे अपनी संतान और अपने देशकी उन्नतिका कोई भी उपाय नहीं सोचते, सोचे कौन धनाढ्योंको तो बैठ आराम से

इतना सुनते ही सभ्यगणोंने प्रसन्नता पूर्वक महाराजको नमस करते हुये दूसरे दिन आनेकी प्रतिज्ञा करके प्रस्थान किया।

इति श्रीअद्भुत विचार ग्रंथे

द्वितीय भाग समाप्तः।

सत्युगका आदि है उसी पृथ्वी पर पकका नम्बर और जिस पृथ्वी पर कलियुगका अन्त है उसी पृथ्वी पर ८६४० का नम्बर लगाया है। लेकिन गणितको जानने वाले तो लगाये हुये नम्बरोंको मन घडित कदापि नहीं कहेंगे जैसा कि तुम लोगोंने समझ रखा है।

पाठक गणों जब इस प्रकार महात्माके वचन सुन कर सत्य अन लज्जित होते हुवे हाथ जोड़ कर क्षमाकी प्रार्थना करके परस्पर कहने लगे कि स्वामीजी गणितके हिसाबको भी खूब जानते हैं देखो पृथ्वीयों पर लगे हुवे नम्बरोंको कैसे स्पष्ट रीती से समझा दीया और पहले भी बहुत से प्रश्नोंका उत्तर हिसाब से ही समझा चुके है अब हम लोगोंको पहिले ऐसे प्रश्न करने चाहिये कि जिसका उत्तर हिसाब द्वारा ही दीया जाय क्योंकि तरह २के हिसाबोंको समझ लेना हम वैद्योंका मुख्य कर्तव्य है ऐसा विचार कर यह प्रश्न करने लगे।

प्रश्न—महाराज आपने पहिले कहा कि इस कल्पकी सृष्टीमें कुल ८४००००० चौरासी लाख चार अंजयन्ती महोत्सव हो चुकेंगे अब हम यह जानना चाहते हैं कि यह महोत्सव भूत कालमें कितनी बार तो हो चुका है और भविष्यत कालमें कितनी बार फिर होने वाले है कृपया इसका हिसाब भी आप हम लोगोंको अच्छी तरह समझा दीजिये क्योंकि शास्त्रोंमें बहुत सी जगह ऐसा लेख मिलता है कि श्रेष्ठ पुरुषोंके साथ समागम होने से ही पुरुष संशय रहित हुवा करते हैं इस लिये हमारा यह भी संशय दूर कीजिये।

उत्तर—प्रिय लगों! इस प्रश्नका उत्तर तो आप लोग स्वयं ही गणित द्वारा समझ सके है कि सृष्टिकी आदि से ले कर आज पर्यन्त इतनी बार तो यह महोत्सव हो चुके है और आज से ले कर सृष्टिके अन्त तकके समयमें इतनी बार फिर होने वाले हैं

ही फ़ुरसत नहीं मिलती और गरीब बिचारा कर ही क्या सकता है कि जिसका पेट पूरा नहीं भरता खैर इन झगड़ोंको जाने दीजिये परन्तु तुमने हमारे लगाये हुये पृथ्वीयों पर नम्बरोंको मन घड़ित कैसे समझा, क्या कोई विद्वान इन पृथ्वीयों पर मन घड़ित नम्बर लगा सका है। नहीं, नहीं, कदापि नहीं; और यदि कोई मन घड़ित नम्बर लगा भी दे तो क्या गणितको जानने वाले विद्वान उसका उपहास न करेंगे? किन्तु करेंहींगे इस लिये मेरे ही लगाये हुए नम्बर को मन घड़ित समझना तुम्हारी नादानीके सिवाय और क्या है।

तो गत समयमें यह जयन्ती महोत्सव हो चुका है और २३६४११
४९९७ वर्ष इस सृष्टीका बाकी है क्योंकि ४३२००००००० में से
१९५५८८५०१३ निकालने से इतना ही रहता है जिनका पांच सो
का भाग निकालन से सताळीस लाख अठाइस हजार दो सो तीस
(४७२८२३०) मिलता है तो समझ लो कि सैताळीस लाख अठाइस
हजार दो सो तीस वार ही इस कल्पकी सृष्टीमें यही महोत्सव
फिर होने वाला है। इन गत और आगामी महोत्सवोंका मिलान
करने से ठीक चौरासी लाख ही मिलता है। सभ्यगणों यह जो
थीजयन्ती महोत्सवके हो चुके या होने वालोंका हिसाब तुम लोगों
को बतलाया गया है सो सूर्य सिद्धान्तादि जिस से कि सालदर
साल पत्रे निकाले जाते हैं इन ज्योतिषके ग्रन्थों से ही कल्पके
आदिको मान कर बतलाया है परन्तु हिसाब से विचारा जाय
तो कल्पके आदिको एक अरब छानवे करोड़ चौरानवें लाख
सैंतालीस हजार तेरह (१९६९४९३०१३) वर्ष हो चुके हैं। क्यों
कि चार अरब बत्तीस करोड़ (४३२०००००००) वर्षोंका ब्रह्माका
एक दिन होता है जिसमें चौदह मन्वान्तर हुवा करते हैं। तो
पाया गया कि एक मन्वान्तरका तीस करोड़ पिचयासी लाख इक-
त्तर हजार चारसो अट्ठाइस (३०८५७१४२८) महीनोंके समीप
होता है। इस समय सातवें मनवान्तरका अट्ठाइसवां कलियुग
प्रचलित है इसलिये छव मनवान्तरोंके भोग चुकने से (१८५१४२८५-
७१) वर्ष पांच महीने तो व्यतीत हो चुके। अब रहा प्रचलित
वैवस्वत मनवान्तर जिसके भी इस समय ग्यारह करोड़ अस्सी
लाख चौसठ हजार चारसो साढ़ा ब्यालीस (११८०६४४४२॥)
वर्षोंके समीप हुवा है। क्योंकि ६ मनुओंके भोग चुकनेमें (४२८)
चोकड़ी व एक सतयुग और त्रेत युगके लाख लाख चालीस हजार

क्योंकि सन्ध्या करते समय द्विज इस संकल्पको नित्य प्रति उच्चारण किया करते हैं जिस से देश और कालका हर समय ज्ञान रहता है सो संकल्प यह है-यथा—

ओं अद्येत्यादि ब्रह्मणो द्वितीयप्रहरार्द्धे श्रीश्वेत वराह कल्पे जंबू द्वीपे भरत खंडे आर्या वर्तान्तर्गत ब्रह्मावर्तैक देशे कुमारीका पीठे बृहस्पति नवे अष्टा विंशतितमे कलियुगे कलि प्रथम चरणे श्रीमहा॰ विष्णो बुद्धावतारे शाकेंद्र शालीमानभूपाले श्रीमन्नृपति विक्रमा दित्यराज्यात सम्वत देकोन विंशति तमेशत मिते नव षष्ठी तमोऽधिकेत्यादि।

इस संकल्प से इतना तो सिद्ध हो ही चुकता है कि इस कल्पके आदिको एक अरब पचानवे करोड़ अठावन लाख पिच्यासी हजार तेरह वर्ष १,९५,५८, ८५,०१३) आज विक्रम सम्वत् १९६९ में हो चुके हैं इस संकल्पको सनातन धर्मावलम्बी आर्य वृत्तके द्विज लड़के भी जानते हैं इस लिये धन्य है इस सनातन धर्मको जो वेद विहित है।

अब सुनिये इन (१९५५८८५०१३) वर्षोंमें से बारह करोड़ वर्ष वह निकाल देना चाहिये जो सृष्टीकी रचना करनेमें लग चुका था पस इनको निकालने से शेष (१८३५८८५०१३) ही रहेंगे इसको पांच सौ का भाग निकालना चाहिये क्योंकि पांच २ सौ वर्ष से ही यह महोत्सव अर्थात् सारी देख हुआ करता है। जब १८३५८८ ५०१३ को पांच सौ का भाग निकालने से ३६७१७७० ही मिलता है पस समझ जाईये। कि छत्तीस लाख सात सौ सत्तर बार

प्रश्नः—महाराज इस संसारको ईश्वरके देखने लायक परमात्माके रचे हुए एक प्रकारका नाटकके खेल रूप से आपने वर्णन किया है परन्तु जैसे हम लोगोंके देखने लायक नाटकका एक खेल चार या पांच घण्टेका हुआ करता वैसे ही ईश्वर है द्रष्टा जिसका ऐसे जगत रूपी नाटकका एक खेल कितने समय तकका हुआ करता है यह भी कृपा करके बतलाइये।

उत्तर—सुनो भाइयों इस परमेश्वरी नाटकका एक खेल मनुष्योंके पांच सो वर्षों तकके समयका हुआ करता है। क्योंकि पांच पांच सो वर्षोंका ही एक २ समय हुआ करता है। इस वास्ते एक चौकड़ी अर्थात् तेतालीस लाख वीस हजार वर्षोंमें ८६५० समय (देखायकी) रूप से सिद्ध होता है और इस भूलोकमें भी इतनी परीक्षायें हैं इस वास्ते एक एक पृथ्वी पर एक २ नूतन नूतन समय उपस्थित है और समयके ही आधीन नाटकका खेल होता है इस वास्ते हर एक खेल पांच सो वर्षके समयका ही मानने योग्य है।

प्रश्न—महाराज इस परमेश्वरके रचे नाटकोंके खेल सर्व कितने प्रकारके हैं और किस २ प्रकार रीतीसे हुआ करते हैं। सो सर्व कृपा करके सुनाइये।

उत्तर—प्रियजनों जगदीश्वरके रचे हुए असंख्य ब्रह्मांड हैं इस से कहा जाता है कि (प्रभू पूर्ण ब्रह्म अखंडा, जाके रोम कोटि ब्रह्मंडा)

अर्थः—प्रभू अखंड पूरन ब्रह्म है जिनोंके रोम रोम प्रति कोटि २ ब्रह्मांड उपस्थित हैं। प्रिय जनों! इन असंख्य ब्रह्मांडोंमें ब्रह्मा, विष्णु शिव आदिक देव भी असंख्य ही हैं इसलिये सृष्टियोंका कोई पारावार नहीं है इन ब्रह्मांडोंके बीच एक एक जो ब्रह्मांड है जिसमें चतुर्दश लोक हैं इस वास्ते असंख्य ब्रह्मांडोंमें असंख्य लोकों की असंख्य

पांच सो साढे इकहत्तर वर्ष बीत चुके थे इस लिये इन सप्तम मनुके ग्यारह किरोड छयासठ लाख चालीस हजार वर्ष सो कुल सत्ताइस (२७) चौकडीके होते हैं और पांच लाख पचपन हजार चार सो साढे अठाइस (५५५४२८॥) वर्ष त्रेतायुगके बाकी रहे हैं,

प्रश्न—महाराज एक ही कालमें सर्व पृथ्वीयों पर भिन्न २ समय और समयानुसार भिन्न २ नाटकका होना आपने कहा है सो तो हम समझ ही चुके परन्तु, यदि एक कालमें सर्व पृथ्वीयों पर एक ही समय माना जाय अर्थात् इस समय सर्व पृथ्वीयों पर यही एक समय जो कि कलियुगके आदिका है मानी जाय तो इसमें कौनसा दोस आता है।

उत्तर—सुनो आर्यों यदि इस कालमें सर्व पृथ्वीयों पर एक ही समय अर्थात् एक कलियुगका आदि ही मानना विचार हो। शास्त्रों से विरुद्ध मालुम होता है क्योंकि शास्त्रकारोंने परमेश्वरमें निरतिशय आनन्द या सुख माना है। जो सुख एक दूसरेकी अपेक्षा से इतने गुन न्यूनाधिक है ऐसा बतलाया जाता है सो सुख सातिशयता होने करके प्रसिद्ध कहा जाता है और जो सुख सर्वकी अपेक्षा से अनन्त गुणा अधिक कहा जाता है वही सुख निरतिशय कहलाता है जैसे कि यजुर वेदकी तैत्तिरीयोपनिषद्की श्रुतियां कहती हैं। जैसे हजार पति से लख पतिको सुख अधिक है और लख पती से करोड़ पतीको सुख अधिक है और जिनकी आज्ञा इन सबों पर चलती है सो इन से भी अधिक सुखी समझा जाता है क्योंकि धनाढ्योंमें भी हुकूमतकी तृष्णा रहा करती है तैसे ही युवा अवस्था वाला होवे और बलिष्ट निरोग सुन्दर रूप वाले पढ़ा वेदोंमें निपुण बुद्धि वाले दरिद्र और धन धान्य सम्पन्न होवे निष्कंटक चक्रवर्ति राजा हो इत्यादि ऐसा मनुष्य सुखके पराकाष्ठा कहते हैं। लेकिन ऐसे भूपति से सौ गुणा मनुष्य गंधर्वोंके सुख अधिक है और मनुष्य गंधर्वों से देव गंधर्वोंका सौ गुणा सुख अधिक है। देव गंधर्वों से पितरोंको सौ गुणा सुख अधिक है इन से आजान देवोंको और आजानदेवों से कर्मदेवोंका सौगुणा

पृथियोंके होने से नाटकोंका खेल भी असंख्य ही है इसकी संख्
कोई भी कथा नहीं सकता परन्तु इस चतुरदश लोकोंके भीतर
यह एक भूलोक है इस भूलोकमें आठ हजार छय सो चा
पृथ्वियोंके होने से या सर्व पृथ्वीयों पर एक ही कालमें
नूतन २ नाटकी खेलके होने से ८६४० प्रकारके ही नाटकके
मानने योग्य है। यह सर्व खेल सृष्टिके आदिमें शुरु हो कर
पर्यन्त इस प्रकार से होते रहते हैं। सृष्टिके आदिमें एक
पृथ्वी पर एक २ नूतन २ नाटकी खेल एक ही साथ शुरु हो
हैं फिर पांच सौ वर्ष पश्चात् इन सर्व खेलोंकी इस प्रकार
बदली होती है कि नम्बर दो (२) की पृथ्वी वाला खेल नम्बर
(१) की पृथ्वी पर और नम्बर (१) एक की पृथ्वीका खेल न
(८६४०) की पृथ्वी पर शुरु से आखिर तक पांच सौ वर्ष पर्यन्त
रहता है इस प्रकार सर्वत्र समझ लेना। पांच २ सौ वर्षोंसे नाट
खेलोंकी बदला बदली इस प्रकार होनेके हिसाब से एक चौक
तककी समयमें एक २ पृथ्वी पर एक २ बार सर्व खेल हो चुके हैं

इस लिये एक भूलोकमें पृथ्वी भरकी सृष्टिका एक ही का
मानने से आठ हजार छयसौ चालीस नाटक सिद्ध होना है
यदि देस २ या ग्राम २ अथवा घर २ प्रति अलहदा २ नाटक मा
जाय तो भूलोकको छोड़ कर एक इसी पृथ्वी पर असंख्य नाट
मान सके हैं इस वास्ते सर्व कितने प्रकारके नाटक हैं इसका उत्त
तो सिवाय ईश्वरके और कोई भी नहीं दे सका परन्तु फर्क
ही भूलोकमें एक २ पृथ्वी पर एक २ नाटक मान करके ही आ
हजार छय सौ चालीस नाटक हैं और इस प्रकार अन्यो-अन्
पृथ्वीयों पर बदल बदल होते रहते हैं सो सब आप लोगोंको यतल
चुके अब और इच्छा हो सो पूछिये।

रे परन्तु यह कभी परमेश्वर से अविदित नहीं रहते इस प्रकारके विचार द्वारा सर्व पृथ्वीयों पर एक ही कालमें चारों युगोंकी नूतन नूतन समयका होना ही सिद्ध होता है और भी सुनिये सर्व जीवोंको कर्मोंके आधीन ही देस मिलता है अर्थात् नगर वा ग्रामादिकोंमें जन्म होना और कर्मोंके अधीन ही काल मिलता है अर्थात् सत्युगादि चारों युगोंमें से अमुक युगकी अमुक समयमें जन्म वा और कर्म्मोंके अनुसार ही मनुष्य वा पशु पक्षी आदिका शरीर मिलता है और न्यूनाधिक वा दुख सुखादि भोग भी कर्मोंके अनुसार ही मिलता है। इस बातोंको सर्व आस्तिक विद्वान मानते हैं। अब सर्व पृथ्वीयों पर एक काल मे ही एक ही समय मानना अर्थात् इस समय सर्व जगह कलियुगका आदि ही माना जाय तो सत्युग आदि चारों युगों की अन्योअन्य समयमें जन्मने व्यापक कर्मों वाले जीवोंको इस समय सतयुगादिकनकी समयोंके अभाव से जन्म रहित ही मानना पड़ेगा और इस समयमें जन्मने व्यापक कर्मों वाले जीवों को अन्य सर्व समयोंमें जन्म हीन मानना पड़ेगा। अब ऐसा ही माना जाय तो एक चौकड़ी तककी समयमें एक ही बार जीवों का जन्म होना सिद्ध होवेगा परन्तु ऐसा देख भी कहीं देखनेमें नहीं आया और युक्ती वा अनुमान द्वारा भी यह नहीं घटता कि एक चौकड़ी तककी समयमें अर्थात् तेंतालीस लाख बीस हजार (४३२००००) वर्षों तककी समयमें सर्व जीवोंका एक एक बार जन्म हो कर शेष वर्षोंमें सर्व जीव जन्म हीन ही रहते हैं।

इस वास्ते सर्वत्र एक समयको न मान कर भिन्न भिन्न पृथ्वीयों पर भिन्न २ समयका ही मानना विचार द्वारा सिद्ध

सुख अधिक है कर्म देवों से मुख्य देवोंको सौगुन सुख अधिक है और मुख्य देवों से भी देवराज इन्द्रको सौगुन सुख अधिक है देवराज से भी देव गुरु वृहस्पतिको सौगुन सुख अधिक है बृहस्पति से भी प्रजापतिको सौगुन सुख अधिक है प्रजापति से ब्र जीको सौगुना सुख अधिक कहा है इस रीति से न्यूनाधिक सुख की व्यवस्था कही है सो यह सर्व सुख अपेक्षित होने से अतएव दोष करके ग्रसित ही जानिये और परमेश्वरको इन सर्वोंकी अपेक्षा कितना गुन सुख अधिक है इसकी कोई संख्या नहीं है इस वास्ते निरअतशय आनन्दकी प्राप्ती एक परमेश्वरमें ही घटती है अन्यों नहीं इस लिये परमेश्वरको सर्व कालमें सर्व भोगोंकी प्राप्ती है ऐसा शास्त्रोंमें [illegible]

भगवान्के इस वाक्य से यह सिद्ध होता है कि कृष्णावतार अनेक बार तो पहिले हो चुके और अनेक बार फिर भी होते रहेंगे। क्यों कि प्रवाह रूप से जगत् अनादि और अनन्त है। इसी लिये समयानुकूल वारम्वार कृष्णावतार भी होते रहते हैं।

अब इस विषय पर विचार करना चाहिये कि असंख्य वारके कृष्णावतारों की असंख्य प्रकारकी लीला अर्थात् अवतार, अवतारमें भिन्न भिन्न लीला होती है या श्रीकृष्णके सब अवतारोंमें एक सी ही लीला होती है जैसी कि पांच हजार वर्ष पहिलेके समयमें इस पृथ्वी पर हुई थी। कदाचित कोई कहे कि प्रति अवतार श्रीकृष्ण महाराजकी भिन्न २ लीला हुआ करती है सो तो असंभव है क्यों कि सब ग्रन्थोंमें केवल यही देखनेमें आता है कि श्रीकृष्णजी द्वापर युगके अन्तमें वसुदेव देवकीके यहाँ मथुरामें जन्म धार नन्द यशोदा के घर गोकुलमें पाले गये थे इत्यादि सब लीलाका स्मरण कर लेना चाहिये। इस से विपरीत यह लेख तो कहीं नहीं देखनेमें आया कि अमुक कल्पमें या मन्वन्तरमें कृष्णावतार द्वापर युगको छोड़ कर सत्य युगमें या त्रेता युगमें अमुक ब्राह्मण या वैश्यके घर हुआ था और वह लीलाकी थी सो इन लीलाओं से विपरीत थी इसलिये भिन्न २ लीलाका होना यद्यपि सिद्ध नहीं होता फिर भी सुनिये इस समय इस कल्पकी सृष्टिको लग भग ४५० साढ़े चार सौ चौकड़ी बीत गई हैं और एक चौकड़ीके पश्चात् पहिले वाला वही समय आ जाया करता है इसलिये इस कल्पकी सृष्टिमें भी इस भूमि पर ४५० चार सौ पचास बार कृष्णावतार हो चुकना सिद्ध होता है। यदि प्रथम अवतार से द्वितीय अवतारकी लीला विलक्षण होती होवे तो एक श्रीकृष्ण महाराजके साढ़े चार सौ प्रकारके जीवन चरित्र होने चाहिये थे। तो वो था

होता है। क्योंकि ऐसा मानने मे सर्व कालके युगादिकोंको अपराधेनार्य लोगोंको पांच सौ वर्षमें सारी समय मिल जाती है और समयानुकूल पांच पाच सौ वर्षों से ही पुनः जन्म हो जाता है।

प्रश्न—महाराज आपने कहा था कि कल्पके आदि से लेकर कल्पान्त तककी समयमें मनुष्य पूर्व जन्म वाले सारी ही सरीरको पाते रहते हैं और भोग भी वही भोगते हैं जो पूर्व जन्ममें भोग चुके थे और चेष्टा भी वही होती है जो पूर्व जन्ममें हुई थी सो पूर्व जन्मके सदृश ही चेष्टा होनेमें भगवद्गीताका प्रमाण भी आपने दीया था सो ठीक ही है परन्तु वैसाका वैसा पुनर्जन्म होना अभी तक हमारी बुद्धिमें नहीं जचता इस वास्ते कृपा करके और भी किसी युक्ती द्वारा हम लोगोंको समझाइये कि जिस से आपके कहने से पूरा विश्वास हो जाय।

उत्तर—परित्राणाय साधूनां विना शाय च दुष्कृताम् ॥

धर्म संस्थाय नार्थाय संभवामी युगे युगे।

गीता अ: ४ श्लोक ८ वाँ।

अर्थ-साधू अर्थात् श्रेष्ठ (धर्मज्ञ) पुरुषोंकी रक्षाके लिये व दुष्कृति अर्थात नीचों (दुष्टों) के विनाशके वास्ते और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र यह चार वर्ण हैं व ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, सन्यस्त, यह चार आश्रम कहलाते हैं। इन वर्णाश्रमोंके भिन्न २ धर्म, मनु आदि धर्म शास्त्रोंमें विस्तार पूर्वक वर्णन किये हैं उन वर्णाश्रमोंके धर्मका तिरो भाव होने से पुनः वर्णाश्रमके धर्मकी मर्यादा स्थापन करनेके अर्थात (भगवान्) [illegible] अवतार धारण किया करता है यही इस श्लोकका

भेजे हुये तृणावर्तादि अनेक राक्षसोंको महाराजने बाल्यावस्थामें ही मार गिराये।

वसुदेवजीकी दूसरी रानी रोहिणीजी जो कुछ दिन पहिले से ही नंदके घर रहती थीं उनके उदर से श्रीबलदेवजी पहिले से ही उत्पन्न हो चुके थे, धन्य ब्रज वासियोंके भाग्यको जो उस समय श्रीकृष्ण बलदेवके बाल चरित्रोंको निरीक्षण करते हुए तुतली बोली को सुन कर जन्म सफल करते थे। अहा! उस समय समग्र ब्रज मण्डलमें मधु श्रीभक्ति साक्षात् अपना स्वरूप धारण करके यमुनाके प्रवाहकी तरह बढ़ती हुई वृन्दावनको आच्छादन कर रही थी गोपियाँ मक्खनके लोभ से महाराजको अपने घर बुला कर आनन्दित होतीं थीं, महाराज भी गोप कुमारोंके साथ बछड़ा चराते, बाँसुरीको बजाते, यमुनाके तीर रास विलास करके ब्रज भक्तोंको इतना सुख देते थे कि जिसकी सोलवीं कलाका सुख भी स्वर्गमें नहीं है।

यमुना से कालीनागको निकालना, गोवर्धन पर्वतको उठा कर इन्द्र वृष्टि से ब्रज वासियोंकी रक्षा करना, फिर दोनों भाइयोंका अक्रूरके साथ मथुरा पधार कर राजा कंसको चानूर मुष्टिक आदि पहिलवानोंके सहित मारना, उग्रसेन महाराजको पीछे राज सिंहासन पर बैठाना, माता, पिताको कारागार से मुक्त कर आनन्दित करना, फिर सन्दीपनिजीके यहाँ पढ़ कर पीछे लौटना इत्यादि लीलायें की।

इस समय ब्रज भक्तोंके हृदय विरहानल करके [illegible] निजों से महाराज उद्धवकी प्रशंसा करते हुए ऐसा कहने लगे।
[illegible]

तीन प्रकारके भी देखनेमें नहीं आते इस लिये प्रति अवतार भिन्न २ लीलाका होना न मान कर महाराजके सर्व अवतारोंमें एक सी ही लीलाका होना अर्थात् पहिले अवतारके सदृश ही द्वितीय तारकी लीलाका होना मानने योग्य है। सो लीला यह है-
वंशी क्षत्रियोंमें महाराज यदुकी सन्तान यदु वंशी नाम से जाती थी जिन यदु वंशियोंमें शूर सेनके पुत्र वसुदेवजीका वि मथुरा नरेश महाराज उग्रसेनके कनिष्ठ भ्राता देवककी पुत्री देव के साथ हुआ था, जिनके उदर से श्रीकृष्ण महाराजका अवत हुआ है। जिस समय महाराजका अवतार हुआ था उस सम वसुदेव व देवकी दोनों ही उग्रसेनके पुत्र कंसके हुक्म से ए अलहदे स्थान में कैद थे। परन्तु बालकोंकी हत्या करने वा कंसके भय से वसुदेवजी श्रीकृष्णको प्रकट होते ही छिपा क यमुना पार लेजी गोकुलमें अपने मित्र नन्दकी रानी यशोदाके पास जा सुलाया और यशोदाके भी उस समय एक पुत्री उत्पन्न हुई थी उसे इस विचार से ले आया कि कन्याको देख कर कंस नहीं मारेगा। परन्तु देवकीके आठवें गर्भ से अपनी मृत्यु समझने वाले निर्दयी कंसने उस कन्याकी हत्या करने से भी मुँह नहीं फेरा किन्तु एक और भी आज्ञा जारी करवा दी कि हालके जन्मे हुवे तमाम बालकोंको मार डालो। भर्तृहरिने ठीक ही कहा है कि दुरात्माओंको अन्य प्राणियों पर करुणा (दया) नहीं आती इसी आज्ञाका पालन करनेके लिये पूतना राक्षसीने गोकुलमें आ कर अनेक बालकोंको हनन किया, पश्चात् जब महाराजको भी जहर लगे हुवे स्तनों से दूध पिलाने लगी तो महाराजने दूधके साथ ही उस राक्षसीके प्राणोंको भी खींच लिये। इसी तरह कंसके

मान भंग करके कुन्दनपुरमें राजा भीष्मकी कन्या रुक्मिणीको अम्बा के मंदिर से उठा लाये इन से विवाह करके फिर सत्यभामादि सात पटरानियोंके साथ विवाह किया। पश्चात् जरासंधको भीमसेनके हाथ मल्ल युद्धमें मरवा कर अनेक राजाओंको कारागार से मुक्त किया और भौमासुरको मार कर सोलह हजार एक सौ राज कन्याओंको छुड़ वाया और उनकी इच्छाके अनुसार उन से भी महाराजने एक ही साथ विवाह किया। इस लिये महाराजकी असंख्य सन्तान बढ़ गई थी।

जब अनेक योद्धाओं सहित दन्त वक्र वा मिथ्या वासुदेव आदिके जो द्वारका पर चढ़ आये थे तो उनको मार कर महाराज युधिष्ठिरके राज सूर्य यज्ञके आरम्भमें शिशुपालको भी मारा। और जब कौरव पाण्डवोंके बीच ईर्षा द्वेष करके विरोध उत्पन्न होने से महाभारतका युद्ध आरम्भ हुआ तो उस समय मोह करके धर्माधर्मके विचार से रहित बुद्धि वाले अपने प्रिय सखा अर्जुनको युद्ध पर भगवतगीताका उपदेश करके उनका मोह रूपी कार्पण्य दूर किया और विजय प्राप्ति करवा कर पाण्डवोंको पुनः राज्य पर छत्तीस वर्ष निष्कण्टक राज्य भोग सुख प्रदान किया। जब महर्षि दुर्वासाके शाप से प्रभास क्षेत्रमें कुल यदुवंशी परस्पर लड़ मरे और एक भीलके हाथ से पैरमें बाण लगनेके निमित्त से, श्रीकृष्ण महाराज भी पीछे गोलोक धामको पधार गए तब पाण्डव भी उस समय और सन्यास धारण करके हिमालयमें द्रौपदी सहित जा गले।

अब जब कृष्णावतार होता है तब तब यहाँ ऐसा हुआ करता है जो मैं संक्षेप से वर्णन कर चुका हूं। इस से यह आपको मानना पड़ेगा कि जब जब कृष्णावतार होता है तब तब गाइ चरैया गोपी

सो० कहाँ नन्द को संग कहाँ खेल वृन्दावन विपिन
कहाँ वह प्रेम तरंग, वंशीवट यमुना निकट ॥

आह ! यह कैसा स्नेहयुक्त वाक्य है इसका भाव समझने से हृदय पानी पानी हो जाता है इसलिये धन्य है व्रजको और व्रज भक्तों को जिनके साथ महाराजका ऐसा प्रेम था। यह नियम ही है कि जो प्राणी ईश्वरके साथ जितना प्रेम करता है तो ईश्वर भी उस प्राणीके साथ उतना ही प्रेम करता है न्यूनाधिक नहीं।

व्रज वासियोंने महाराजकी लीलाका निरीक्षण करके अति आनन्द लाभ किया था परन्तु जब महाराज मथुरा से द्वारका पधारे तब महाराजके वियोगका दारुण दुःख उन्हीं व्रज वासियोंको हुआ था इस से यह उपदेश मिलता है कि विषय जन्य सुख चाहे जैसा उत्तम क्यों न हो परन्तु संस्कार दुःख व परिताप दुःख परिणाम दुःख इन तीनों प्रकारके दुःखों करके मिश्रित (मिले हुए) ही हुआ करते हैं और विषय सुख अनित्य भी होता है सदा एक रस कदापि नहीं रहता इसी लिये विद्वान लोग विषय वासनाको त्याग कर नित्यानन्द की प्राप्तिके लिये ब्रह्म विद्याका अनुसरण किया करते हैं।

पश्चात् दोनों भाई सान्दीपनि पण्डितके घर विद्याध्ययन करने को गये वहाँ पर सुदामा ब्राह्मण से मित्रता होने से कालान्तरमें सुदामा द्वारिका आये तो उसको अटूट धन दे कर उसका दारिद्र दूर किया और गुरु दक्षिणामें समुद्रमें डूबे हुए गुरुके पुत्रको जीवित ला दिया। फिर मथुरा पर चढ़ आने वाले जरासिन्धकी सेनाका कई बार हनन किया और काल यवनको मुचुकुन्दकी दृष्टि से भस्म करवा दिया पश्चात् राजधानीको मथुरा से उठा कर समुद्रके बीच द्वारिका पुरीमें स्थापन की। फिर शिशुपालादि अनेक राजाओंके

के प्रमाणके वास्ते हम से पूछा था जिसके उत्तरमें बहुत सी केयां है परन्तु यह युक्ति बहुत ही उपयोगी है सो कह सुनाई । तुम लोगोंकी जो इच्छा हो सो पूछिये । इतना सुन कर स्वगण फूले न समाये और महात्माकी ओर इस युक्तिकी बहुत । प्रशंसा करके इस प्रकार कहने लगे।

महाराज! इस युक्ति व प्रमाणों द्वारा व अनुमान करके उसी ाटकका होना तो हम ठीक अच्छी तरह समझ गए परन्तु आपके ख से निकले हुए वचनामृतों से अभी तक हम नहीं अघाये इस लेये अन्य कोई कथा या युक्तियाँ जो कि इसी विषय पर हों कृपा करके फिर भी सुनाइये जिस से हमारी इच्छा पूर्ण होनेके साथ इसी नाटककी पुष्टि भी हो।

महात्मा बोले। सुनो भाईयो! रात्रि तो अधिक आ जायगी परन्तु कोई चिन्ता नहीं। कहते हैं चित देकर सुनिये-यह अध्यात्म रामायणके अयोध्या कांण्डकी कथा है कि जिस समय श्रीरामचन्द्रजी महाराजको वनवास करनेकी आज्ञा हुई थी उस समय उसी आज्ञाको सुन कर महारानी जानकी भी वनवासके लिये तैयार हो गई जब महाराज रामचन्द्रजीने वनकी आपत्तियाँ वर्णन करके महारानीको संग चलने से बारम्बार रोकने लगे तब तो सती गरज कर बोलीं महाराज! क्या, आपने कभी रामायण नहीं सुनी? यह तो बतलाईये पहिले कभी ऐसा कौन राम वनको गया कि जिसके साथ जानकी न गई हो। इतना सुन कर महाराज तूष्णी भावको प्राप्त हुये और जगदम्बा महाराजके संग चल दोनों। और सुनिये! योग वाशिष्ठमें लिखा है कि महाराज काक भुसण्डीने कहा कि मैने २७ सताईस बार पहिले भी रामायण होते हुए देखा था।

ग्वाल वसुदेव देवकी कंस कौरव पाण्डव आदिक असंख्य मनुष्य जरूर ही उत्पन्न होते हैं क्योंकि इन लोगोंके जो कि महाराजकी लीलामें सम्बन्ध रखते हैं उत्पन्न हुए बिना महाराजकी वही लीला कदापि हो ही नहीं सक्ती। जब नंदादि असंख्य मनुष्योंका महाराज के साथ साथ उसी समय पर उत्पन्न होना आप स्वीकार करेंगे यह भी आपको मानना पड़ेगा कि नन्दादिककी तरह हम लोग भी अपने उसी समय पर उत्पन्न हुआ करते हैं क्योंकि जैसे उस समय पर असंख्य मनुष्य थे तो अनुमान होता है कि उस से पहिले उन लोगोंके पुरुष भी थे तैसे ही इस समय पर उन्हींके सन्तान भी हैं जब यह असंख्य नन्दादि पहिले की तरह ही हुआ करते तो उनके पुरुष या सन्तान या अन्य कोई किस तरह उसी रूपमें उत्पन्न नहीं होंगे। कहनेका मतलब यह कि सबके सब उसी रूप में जरूर उत्पन्न होते हैं क्योंकि सृष्टिका कर्म सर्व जातियोंके वास्ते एकसा ही हुआ करता है।

जैसे एक वर्तनमें बहुत से चावल पकाए जाते हैं उन चावलों में से एक या दो चावल पके हुए देख कर अनुमान होता है कि यह सब चावल पके हुवे हैं। ऐसा अनुमान सर्वत्र माननीय होता है तैसे ही उन नन्दादिक असंख्य मनुष्योंका पूर्व जन्मके सदृश ही उत्तर जन्म होना अर्थात उसी ही स्वरूप से उत्पन्न होना मानने से यह भी आपको अनुमान द्वारा मानना पड़ेगा कि अस्मदादि सब मनुष्योंका भी नन्दादिकोंकी तरह पूर्व जन्मके सदृश अर्थात उसी ही स्वरूप से उत्तर जन्म धारण किया करते हैं यह अनुमान भी पूर्व अनुमानके सदृश ही मान्य है। क्योंकि सब मनुष्योंका भी परस्पर सजातीय सम्बन्ध है।

इतना कह कर महात्मा फिर कहने लगे, प्रिय सज्जनो! हमने

महाभारतमें लिखा है कि, जब श्रीकृष्ण महाराजके गोलो[क]
धाम पधारने वा द्वारिका पुरीका सिन्धुमें निमग्न होनेके पश्चा[त्]
पांडव गणोंने यह निश्चय कर लिया कि अब हम लोगोंका दे[ह]
समाप्त हो चुका इस लिये हमको चाहिये कि अब इस अस[ार]
संसारको छोड़ कर अपने लोकको चले जांय ऐसा विचार कर[के]
मथुराका राज्य प्रद्युम्नजीके पौत्र अनिरुद्धजीके पुत्र वज्रको वा हस्ति-
नापुरका राज्य परीक्षितको सौंप कर उसका भार सुभद्राको दे
द्रौपदी सहित पांचों भाई वीर सन्यास धारण करके हस्तिना[पुर]
से चल निकले उस समय बाकी चारों भाई तो शस्त्र रहित थे पर[न्तु]
एक अर्जुन गांडीव धनुष बाण धारण किये था। जब वहां
समुद्रके पास गये तो वहां पर अग्नि देवताने आ कर अर्जुन[से]
कहा महाराज! यह समय शस्त्र रखनेका नहीं है इस लिये मैं
भी आपका गांडीव धनुष व अक्षय तूणी हमको सौंप दीजिये, ज[ब]
फिर आपका अवतार होगा उस समय फिर भी यही धनुष बा[ण]
आपके पासमें आकर उपस्थित कर दूंगा। इतना सुन कर अर्जुनने
भी शस्त्र छोड़ दिया। और देखिये।

श्लोक। नरेंद्र दाइं जातु नानं नहूं नेमे शनाभिवाः।

द अजय गांडीव धनुष व अक्षय तूणिका अग्निदेवने ही अर्जुनको पे थे। इस से सिद्ध होता है कि वारंवार अर्जुनको अग्निदेव ही डीव धनुष दिया करते हैं और खेल समाप्त होने पर पीछे ले या करते हैं। अब ज़रा विचार कीजिये कि अर्जुन ईश्वर कोटि नहीं है। किन्तु जीव कोटिमें ही है इस लिये भगवानके अति क अन्य जीवोंका जन्म भी वारम्बार अवतारोंकी भांति यही मा उपरोक्त कथा से खूब ही सिद्ध होता है।

शंका—कदाचित कोई कहे कि अर्जुन भी प्राकृति जीवोंकी नांई धारण जीव नहीं है किन्तु देवान्स है और अर्जुन व श्रीकृष्ण र नारायणका अवतार भी है, इसलिये प्राकृति जीवोंकी इन से लना नहीं होती। इस वास्ते साधारण मनुष्योंका अर्जुनके मान यहांका यहीं होना अर्जुनके दृष्टान्त से नहीं बनता।

समाधान—इस शंकाका निवारण भगवद्गीताके इसी श्लोक से ो सकता है जो मैं अभी आप लोगोंको सुना चुका हूं।

भगवानने कहा कि मैं श्रीकृष्ण और तू अर्जुन और ये राजा लोग र्व कालमें भी थे और इस समय प्रत्यक्ष हैं ही फिर भविष्यतमें ी अस्मदादि सर्व होवेंगे। प्रियजनो! इस वचन से साफ़ प्रतीत ोता है कि श्रीकृष्ण व अर्जुनकी तरह अन्य समस्त अस्मदादि ीव भी यहीं ही हुआ करते हैं, क्योंकि "इमे जनाधिपा" इस चन से महाराजने अखिल सर्व राजाओंको हाथके इशारे से बतला र कहा यह सर्व पहिले भी थे और आगे भी होवेंगे।

इसका भाव केवल व अन्य राजाओं पर ही नहीं किन्तु सभी र पड़ता है क्योंकि यह तो हो ही नहीं सकता कि उस समयके ी अनेक मनुष्य यहांका यहीं हुआ करें और अन्य समयके नहीं स वास्ते अस्मदादि सबोंका महाराजके वचनानुसार अपना २ को

पृथ्वी पर अवश्य होते हैं। यहां पर हमारे पाठकोंको इस बातके जाननेकी उत्कण्ठा होती होगी कि कुल कितने अवतार, किस २ काम वाले होते हैं और क्या क्या क्रिया करते हैं। इसका वर्णन संक्षेप से पूर्वार्ध समाप्त होने पर चौवीस अवतारोंके प्रकरणमें करूंगा।

प्रिय पाठकगण ! अवतारोंका तो नियत समय पर बारम्बार होना आपके सम्मुख सिद्ध हो ही चुका है अब इन अवतारोंकी तरह ही अस्मदादि जीवोंका भी उसी स्वरूपमें होना अनुमान, अवतारोंके दृष्टान्त से समझ लेना चाहिये।

शंका—यदि कोई कहे कि हर त्रेतामें रामावतार व हर द्वापरमें श्रीकृष्णावतारका होना तो ठीक जंचता है और लीला भी वही हुआ करती है परन्तु अवतारोंके दृष्टान्त से राम, कृष्ण, की तरह अस्मदादि जीवोंका बारम्बार उसी स्वरूपमें होना व चेष्टा भी वही होगी, मानने योग्य नहीं क्योंकि अवतार तो भगवानके हुआ करते हैं सो भगवान् स्वतन्त्र हैं और अपने कृत कर्म्मानुकूल फल सुख दुःखादि भोगके निमित्त अवतार धारण नहीं किया करते। और जीव परतन्त्र हैं सो अपने किये हुये कर्म्मोंके फल सुख दुःखादि भोगके निमित्त से ही बारम्बार कर्म्मानुकूल शरीर धारण किया करते हैं। इस वास्ते केवल भगवानका दृष्टान्त तो जीवों पर नहीं घटता।

समाधान—ऐसी शंकाका समाधान महाभारतकी कथा से भली प्रकार सिद्ध होता है। देखो, इस कथा से अर्जुनका फिर अर्जुन ही होना सिद्ध होता है क्योंकि अग्निदेवने अर्जुन से कहा कि आप अपना गाण्डीव धनुष इस समय मुझको सौंप दीजिये जब आपका अवतार फिर से होगा उस समय फिर भी आपको यही महान धनुष वापिस लौटा दूंगा। मित्रगणो! इस समय भी

अजय गांडीव धनुष व अक्षय तूणिका अग्निदेवने ही अर्जुनको
दे थे। इस से सिद्ध होता है कि बारंबार अर्जुनको अग्निदेव ही
गांडीव धनुष दिया करते हैं और खेल समाप्त होने पर पीछे ले
लिया करते हैं। अब जरा विचार कीजिये कि अर्जुन ईश्वर कोटि
नहीं है। किन्तु जीव कोटिमें ही है इस लिये भगवानके अति
रिक अन्य जीवोंका जन्म भी बारम्बार अवतारोंकी भांति यही
प्रकार उपरोक्त कथा से खूब ही सिद्ध होता है।

शंका—कदाचित कोई कहै कि अर्जुन भी प्राकृत जीवोंकी नाईं
साधारण जीव नहीं है किन्तु देवान्स है और अर्जुन व श्रीकृष्ण
नर नारायणका अवतार भी है, इसलिये प्राकृत जीवोंकी इन से
तुलना नहीं होती। इस वास्ते साधारण मनुष्योंका अर्जुनके
समान यहांका यही होना अर्जुनके दृष्टान्त से नहीं बनता।

समाधान—इस शंकाका निवारण भगवद्गीताके इसी श्लोक से
हो सकता है जो मैं अभी आप लोगोंको सुना चुका हूं।

भगवानने कहा कि मैं श्रीकृष्ण और तू अर्जुन और ये राजा लोग
पूर्व कालमें भी थे और इस समय प्रत्यक्ष हैं ही फिर भविष्यतमें
भी अस्मदादि सर्व होवेंगे। मित्रजनों! इस वचन से साफ प्रतीत
होता है कि श्रीकृष्ण व अर्जुनकी तरह नरश समस्त अस्मदादि
जीव भी यही हो हुआ करते हैं, क्योंकि "इमे जनाधिपाः" इस
वचन से महाराजने ससैन्य सर्व राजाओंको हाथके इशारे से बतला
कर कहा यह सर्व पहिले भी थे और आगे भी होवेंगे।

इसका भाव केवल स सैन्य राजाओं पर ही नहीं किन्तु सभी
पर पड़ता है क्योंकि यह तो हो ही नहीं सकता कि उस समयके
तो असंख्य मनुष्य सर्वदा वही हुआ करें और अन्य समयके नहीं
इस वास्ते अस्मदादि सबोंका महाराजके कथनानुसार आवागमनको

नाई वही शरीर व चेष्टाका होना भली भांति सिद्ध होता है, जैसे कि पहिले जन्ममें था।

पाठक वृन्द! इस प्रकार शास्त्रोंके आशयको भी वही नाटकके उपयोगी समझ कर सभ्यगणोंके आनन्दकी सीमा न रही और महात्माको हार्दिक धन्यवाद देते हुए इस प्रकार पूछने लगे—

प्रश्न—महाराज! अन्य कथाओंको तो, किसीने सुनी है और किसीने न भी सुनी हैं परन्तु भगवद्गीताके मूल व अर्थको तो हिन्दू जातिके वैष्णव व शैव आदि प्रायः सब ही विद्वान् विचारते हैं क्योंकि यह ग्रन्थ सबहीके लिये यहां तक परम पूज्य है कि अन्त समयमें कुटुम्ब वाले अन्य कथाओंको छोड़ कर केवल इसी भगवद्गीताको पढ़ कर सुनाया करते हैं। बहुत से विद्वान् नित्यकर्मकी नाईं नियम बद्ध इसका पाठ किया करते हैं। बहुत से अर्थको विचार करते हैं अर्थात् भगवद्गीता अति प्रसिद्ध है। इस पर बहुत से विद्वानोंने संस्कृत अंग्रेजी, लेटिन, जर्मन आदि भाषाओंमें टीकाएं व अनुवाद भी किया है और कई सज्जनोंने हिन्दी में भी अर्थ करके छपा दिया है। इस वास्ते उत्तम व मध्यम बुद्धि वाले पुरुष कोई इसको विचार रहे हैं। यह तो बड़ी आश्चर्यकी बात है कि ऐसे सुप्रसिद्ध ग्रन्थमें फिर भी स्पष्ट रीति से साफ बोध होने योग्य इस सेम (वही) नाटकका होना अन्य विद्वानोंने, क्यों नहीं कहा क्या राईकी ओटमें पर्वत छिपा रहता है?

उत्तर—महात्मा बोले—सुनो भाइयो! हमारे परम पूज्य स्वामी शंकराचार्यजी महाराजने इसी भगवद्गीता पर भाष्य किया है उसका तात्पर्य अद्वैतको सिद्धिमें है और, शंकर मतानुयायी महा पुरुष व विद्वानोंने भी जो टीकाएँकी हैं सो सब अद्वैत मतके अनुसार ही हैं और वैष्णव सम्प्रदायके परम पूज्य चारों आचार्योंने जो टीकाएं की हैं उनमें मत से किसीने तो द्वैतको और किसीने द्वैता-

द्वैतको किसीने विशिष्टा द्वैतको किसीने शुद्धा द्वैतको सिद्ध किया है और जिस जिस सम्प्रदायके बैष्णवोंने जो टीका की है उन्होंने अपने अपने आचार्योंके मतानुसार ही अपने मतकी पुष्टिके लिये ही की है। इस प्रकार हिन्दू धर्मके जितने आचार्यों व विद्वानोंने इस श्रीमद्भगवद्गीता पर जितनी टीकायें की हैं उसके अक्षरार्थके भावको अपने मतकी पुष्टिके लिये ही खींचा तानी करनेमें प्रवृत्ति रहे हैं, अन्य अर्थके खोजनेका इन्हें अवकाश भी प्राप्त नहीं हुआ।

फिर भी मुनियों सब शास्त्रोंने पारमार्थिक वा व्यवहारिक व प्राति भासिक इन भेद करके तीन प्रकारकी सत्ता मानी है। जहां चेतन भिन्न अनात्म पदार्थ जगदादि सबको स्वप्न नगर व गन्धर्वनगरकी नाईं मिथ्या वर्णन किया है वहां पारमार्थिक सत्ताका उपयोग है और जहां जगतको वा जगतके व्यवहारोंको भी सत्य माना है वहां व्यवहारिक सत्ता मानी गई है और जहां रज्जुमें सर्प सुक्तिमें रजत आदिक बिना हुए पदार्थोंका भी सत्य वस्तुकी तरह प्रतीत है वहां प्राति भासिक सत्ता है। भगवद्गीता पर विद्वानोंने जो टीकायें की हैं वहां पर मुख्य पारमार्थिक सत्ताका ही उपयोग किया है। इसीलिये व्यवहारिक सत्ता से सम्बन्ध रखने वाले वहाँ नाटकके होने पर उन्होंने ध्यान भी नहीं दिया।

वहीं नाटकके होने पर ध्यान न देनेका एक और भी कारण है कि जिस वस्तुके प्रादुर्भाव करनेका सौभाग्य देनेकी रचना परमेश्वरने जिस शरीरके वास्ते निर्मित की है वह वस्तु उसी शरीर करके ही प्रकट हुआ करती है अन्यों से नहीं। देखो तार रेल वा विद्युत (बिजली) को काममें लाना इत्यादि अनेक कौशल इस समयमें प्रकट हो चुके हैं और फिर होने रहते हैं क्या पहिले समयमें कोई ऐसा शिल्पी विद्यावान् विद्वान् नहीं था? वा इन विद्याओंका प्रादुर्भाव नहीं कर सकता था? नहीं! नहीं!!

कदापि नहीं । विश्वकर्मा से आदि लेकर बहुत से विद्वान भी थे और इन विद्याओंका प्रादुर्भाव कर भी सकते थे, परन्तु ईश्वरको इन्हीं समयके विद्वानोंको ही तार टेलादि इत्योंके प्रादुर्भाव करनेका सौभाग्य देना स्वीकार था ; इसीलिये पहिले समयके विद्वानोंने तार, रेल पर ध्यान भी नहीं दिया इस वास्ते यही नाटकके होनेका अन्य विद्वानोंके ध्यानमें न आने से भी कोई आश्चर्य नहीं है क्योंकि जैसे परमेश्वर सूक्ष्म से सूक्ष्म व स्थूल से स्थूल है अर्थात् छोटे से भी छोटा बड़े से भी बड़ा है और सर्वत्र व्यापक होने से सर्वजीवोंके अति समीप भी है, परन्तु राईकी ओट से पर्वतके छिपे रहनेकी नाईं ईश्वरका सिवाय चित्त निरोधी योगियोंके अन्य प्राकृत जीवोंको साक्षात् कार नहीं होता, तैसे ही इस समय अनेक विद्याओं व पदार्थ इस जगत्में छिपे हुए हैं, परन्तु सिवाय अधिकारियोंके अन्य किसीकी समझमें नहीं आते । इसलिये जिन जिनके प्रादुर्भावका सौभाग्य जिस २ को मिलना परमात्माने रक्खा है उन उनका प्रादुर्भाव उस उस करके ही हुआ करता है अन्यों करके नहीं ।

प्रियजनो ! इतना सुन कर सभ्यगण बोले—महाराज ! आपकी कृपा से यह तो हम समझ गये " नत्वे वाहं " इस श्लोकार्थका भाव अन्य विद्वानोंने तो पारमार्थिक सत्ताको लेकर केवल आत्मा पर लगाया है और कहा है कि आत्मा पहिले ही था और आगे भी रहेगा अर्थात् तीनों कालोंमें आत्माका अभाव नहीं होता और आप इसका भाव व्यवहारिक सत्ताको लेकर शरीर विशिष्ट जीवात्मा पर लगा कर कहते हो कि इस शरीर सहित आत्मा पहिले ही था और आगे भी रहेगा किन्तु इस सृष्टिके आदि से लेकर अन्त पर्यन्त उपस्थित रहेगा ।

महाराज ! अन्य विद्वानों से आपके विचारमें इतना ही विल-

शणता है इसलिये आपका विचार अवश्य नूतन है, परन्तु हम लोग इस पर अविश्वास नहीं करते क्योंकि इसी भगवद्गीता से विद्वानोंने अनेक प्रकारके भिन्न भिन्न अर्थ निकाले हैं वैसा ही आपने भी एक प्रकारका विचित्र अर्थ निकाला है सो सब अर्थ अक्षरार्थके अनुकूल ही हैं। यह आप पहिले ही सिद्ध कर चुके थे कि हमारे शास्त्रोंके एक संकेत से अनेक प्रकारका मतलब निकलता है इस लिये आपका वचन मान्य भी है, परन्तु केवल इसी श्लोक से यही नाटकका वारम्वार होना तो सिद्ध नहीं होता।

प्रश्न—महाराज! इस श्लोकका तो यही भाव है कि श्रीकृष्ण अर्जुन और अन्य राजे लोग जो युद्धस्थलमें उपस्थित थे सो सब वर्तमान काल से पहिले भी थे और पीछे भी होते रहेंगे। इस भगवद् वाक्य से तो यह भी मान सकते हैं कि केवल एक ही जन्म पहिले थे, यह तो सिद्ध नहीं होता कि अनेक जन्मों से कृष्ण अर्जुन होते हुए चले आये हैं। इस वास्ते कृष्ण अर्जुनके अनेक जन्म होनेमें अन्य कोई शास्त्रीय प्रमाणकी आवश्यकता है सो भी पूरी कीजिये।

उत्तर—प्रियजनों! "ऐसी ऐसी बहुत सी शंकाओंका समाधान एक भगवद्गीता से ही भली प्रकार हो सकता है इस वास्ते भगवद्गीता ड्रेम (यही) नाटकके होनेमें प्रमाण देनेके लिये बड़ी उपयोगी है। बहुत से विद्वानोंने इसका अर्थ निरूपित किया है परन्तु पुनःपुनःमें भी इसका तात्पर्य खूब ही घटता है। यदि कोई विद्वान इस तरफ ध्यान देकर नूतन प्रकारकी टीका करे तो बड़ी ही आनन्द दायक और जगतकी उपकारणी हो। क्योंकि यह कल्पवृक्ष अमृत-मय है। इसका एक रूपी अमृत तो विद्वानोंने निकाल कर रो रक्खा है, परन्तु इसका एक दूसरा ही बड़ा महत्व व्यवहारिक भावो

लेकर प्रवृत्ति मार्ग से विख्यात होनेकी पूरी आवश्यकता है। मैं भी कभी कभी इच्छा करता हूं कि किसी पण्डित महोदयकी सहायता लेकर गीताके अक्षरार्थ पर अपने दिलका भाव प्रकट करूं, फिर भी थरमाता हुआ सोचता हूं कि मुझ तुच्छ बुद्धि खद्योत समको ऐसे महत् कार्यमें जो सूर्य सम विद्वानोंके करने योग्य है हस्ताक्षेप करनेका साहस करना ठीक नहीं। अब सचित्त होकर अपने प्रश्नका उत्तर सुनिये जिसके लिये मैं भगवद्गीताका ही प्रमाण देता हूँ।

श्लोक—बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप॥ अ० ४ श्लो० ५

अर्थ।—श्रीकृष्णजी कहते है, हे अर्जुन! हमारे और तुम्हारे भी बहुत-से जन्म व्यतीत हो चुके हैं उन भूतकालके सर्व जन्मोंको मैं जानता हूँ परन्तु तू नहीं जानता।

सभ्य जनो! इस से अधिक और प्रमाण क्या होगा? इसका तात्पर्य आप समझ ही गये होंगे, परन्तु यह भी भेद खोले देता हूं कि पूर्वके सर्व जन्म महाराजको ज्ञात और अर्जुनको अज्ञात क्यों था इसका कारण यह है कि योगियोंको चित्त निरोधके प्रसाद से तीनों कालोंके दूरस्थ व समीपस्थ सर्व पदार्थ कर विल्ववत् (हाथमें फलकी नाई) प्रत्यक्ष रहता है। युक्त व युञ्जान भेद करके योगी भी दो प्रकारके होते हैं। जो बिना किये किसी साधनके जन्म से ही योगी होता है वही युक्त योगी है। और जो साधन सम्पन्न होकर अभ्यासके बल से सिद्धियाँ पाता है वह युञ्जान योगी है। युक्त योगी ईश्वर कोटिमें होते हैं और युञ्जान योगी जीव कोटिमें।

बाल्यावस्थामें ही यशोदाको मुखमें त्रिलोकी दिखलाना व जन्म से पलनेमें नहीं जाना देखे ऐसे अलौकिक चमत्कार दिखलाने श्रीकृष्ण महाराजको युक्त योगी समझना चाहिये क्योंकि

हाराज त्रिकालज्ञ थे और अर्जुनमें किसी प्रकारका पूर्ण योग नहीं
ा इस लिये उनको त्रिकालज्ञ दृष्टि नहीं थी परन्तु उत्तम अधिकारी
ाकर थे।

सभ्य गण, अब तो आपको निश्चय हो गया होगा कि नन्दा-
देवोंकी भांति हम लोग भी कई जन्मों से यही होते हुए चले आये
हैं जैसे कि पहिले जन्मोंमें थे।

इतना सुन कर सभ्यगण कहने लगे,—महाराज! आपके
प्रसाद से यह शंका भी हमारी अच्छी तरह से निवृत्त हो गई और
यह भी हम समझ गये कि भगवान्के अवतारों व नन्दादिकों
की तरह हम लोग भी अपना समय पाकर यही शरीर धारण करते
हुए वारम्बार उत्पन्न हुआ करते हैं। परन्तु इस विषय पर एक
और भी शंका उपस्थित है कृपया उसका भी निवारण कीजिये।

प्रश्न—महाराज! यही समय तो, एक चौकड़ी के अर्थात्
४३,२०००० तितालीस लाख, बीस हजार, वर्षोंके पश्चात् ही आया
करता है कृष्णावतार वो नन्दादिक भी एक चौकड़ीके पश्चात् ही
पुनः यही समय आने पर उत्पन्न हुआ करते हैं और हम लोगोंके
वास्ते पांच पांच सौ से ही पुनः जन्म होना आपने कहा है
इसलिये ४३,२०००० वर्षों से उत्पन्न होने वाले नन्दादिकोंका
दृष्टान्त पांच पांच सौ वर्षों के उत्पन्न होने वाले अस्मदादिकों
पर ठीक नहीं जंचता।

उत्तर०—सज्जनो! आप क्या सोच रहे हैं! क्या इस भूलोक
में आठ हजार है सौ चालीस (८६४०) पृथिवियें होने पर भी
एक पृथ्वी पर तो सृष्टि और वर्णाश्रमोंके धर्मकी मर्यादा इत्यादि
व आश्रमोंमें महात्माओंके कारण अवतारोंकी आवश्यकता है और अन्य

आठ हजार छै सौ उन्तालीस (८६३९) पृथ्वियों पर सृष्टि
धर्मकी मर्य्यादा या अवतारोंकी आवश्यकता नहीं है। नहीं। नहीं
ऐसा कदापि नहीं हो सकता। क्यों कि यह सर्व पृथ्वियां एक
लोककी होने से सजातीय धर्म वाली हैं। इस लिये सर्व एक
ही है और सृष्टि व धर्मकी मर्यादा व बारम्बार अवतारोंका
सर्व पृथ्वियों पर समयानुकूल एकसा ही हुआ करता है इस
आप लोगोंको ऐसा निश्चय करना चाहिये कि जहां पृथ्वी है
सृष्टि अवश्य हुआ करती है और जहां सृष्टि होती है वहां धर्म
मर्यादा भी हुआ करती है अतः मर्यादा प्रकृतिका धर्म होने
समयानुकूल बनती बिगड़ती भी रहती है सदा एक रस नहीं
क्योंकि प्रकृतिके कार्य परिणाम वादी हुआ करते हैं। इस
जिस २ पृथ्वी पर धर्मकी मर्यादा भंग होती है उस समय उस
पृथ्वी पर महाराजका अवतार भी हुआ करता है। इस
यह सिद्ध होता है कि महाराजका अवतार भी अस्मदादिकों
भाँति पांच पांच सौ वर्ष से अन्य अन्य पृथ्वीयों पर होते हुए
चौकड़ीके पश्चात् फिर दुबारा उसी पृथ्वी पर हुआ करता
ऐसा नहीं होता कि एक बार अवतार होकर फिर तेतालीस ल
बीस हजार वर्ष (४३२००००) तक महाराज कृष्णावतार धा
न करें। नन्दादिक जो महाराजकी लीलामें सम्बन्ध रखने वाले
वह भी सर्व पांच पांच सो वर्ष से ही पुनः हुआ करते हैं इस वा
अस्मदादिकों पर नन्दादिकोंका दृष्टान्त व नन्दादिकों पर अस्मदा
दिकोंका दृष्टान्त ठीक ही घटता है इसमें कोई प्रकारकी शंका
योग्य नहीं है।

पाठकगण! ... इस प्रकारका वचन सु

कर कहने लगे, कि महाराज ! आपने अति उत्तम और गूढ़ रहस्य को बतला कर हम लोगों पर बड़ा ही उपकार किया है इसलिये हम आपके ऋणी हैं हम लोगों से हो सके ऐसी कोई सेवा करनेके लिये आज्ञा दीजिये जिस से हमारा ऋण रूपी बोझ कुछ हलका हो।

महात्मा इन पुरुषोंकी श्रद्धा भरी वाणीको सुन कर कहने लगे—सुनो भाइयो ! आप लोग हमारे ऋणी नहीं हैं किन्तु हम तुम सब परमेश्वरके ही ऋणी हैं सो ऋण रूपी दोष अपने २ कर्तव्य पालन करने ही से दूर होता है इस लिये हमने जो कुछ तुम्हारे प्रश्नोंका उत्तर दिया है अपना कर्तव्य समझ कर ही दिया है इसका आप लोगों पर मैंने कोई अनुग्रह नहीं किया है और आप लोग जो हमारा उपकार मान कर प्रत्युपकार करनेके लिये कटि बद्ध हुये हो सो सज्जन पुरुषोंका यही कर्त्तव्य हुआ करता है कि जो कोई अपने ऊपर उपकार करे उसके साथ तन, मन, धन करके प्रत्युपकार किये बिना कदापि नहीं रहते। इसलिये मैं तुम्हारे हृदयमें सज्जनताका अंकुर उत्पन्न हुआ देख कर बड़ी प्रसन्नताके साथ तुमको धन्यवाद देता हूँ क्यों कि इस समयमें सज्जन थोड़े ही होते हैं अधिक तर तो ऐसे होते हैं कि किये हुये उपकार भी नहीं मानते, और कई ऐसे होते हैं कि उपकारको मानते हुए भी प्रत्युपकार करनेमें यत्न नहीं करते, और किये हुये उपकारको समझ कर प्रत्युपकार करने वाले तो बिलकुल ही कम होते हैं।

तन करके नमस्कारादि और मन करके ज्ञान ध्यानादि सेवा हुआ करती है सो तो आप लोग हमारी सेवा कर ही रहे हो अब रही धन करके सेवा करनी सो धनकी तो गृहस्थियों को जरूरत रहती है हम साधुओंको धनकी अभिलाषा नहीं है और लोगो भी

नहीं चाहिये इस लिये सब प्रकारकी सेवा हमारे वास्ते आप लोग करही रहे हैं, अतः कोई तरहका संकोच न करके जो कुछ इनसे पूछना हो कल इसी समय आकर पूछना। अब विलम्ब होगया है आप लोग अपने २ घर पधारिये।

इतना सुनकर सभ्यगण महाराजको नमस्कार करके उठ खड़े हुए और रास्तेमें जब तक घर न पहुंचे परस्पर महात्माकी प्रशंसा करते रहे।

इति श्रीअद्भुत विचार ग्रंथे तृतीय भागे पूर्वार्ध समाप्त

भजन लावनी ॥
चौवीस अवतारोंकी ॥

आदि पुरुष अविनाशी भक्त हितकारि धरया चोवीसों अवतार
या प्यारे प्यारे ।

सनकादिक अरु यज्ञ रूप धर प्यारे दे हय ग्रीव, वराह, भगवान्
य संहार ।

नर नारायणका स्वरूप हरि धारे है तप किया । आय बद्री-
ाथ केदारे (बद्रायनी) कपिल देव महाराज ज्ञान अपनी माताको
ीना दत्ता अव धूतं होय चौवीस गुरु कर ली......ना । ऋषभ
ेव अवतार आठवां राज छोड तपकी......ना (मे) राज छोड
ार कीना तपन मघारे ॥ धरया ॥ पृथु राजाने पृथ्वी रूप गोपाले
ई सत व्रतको मच्छ बन प्रलय काल देखा......ले । कच्छप बन
र पहाड पीठ पर भाले है समुन्द्र मथ कर चौदह रत्न निकाले
(ध०) वैद्य धनवन्तर ले कर औषधी सिंधुमें से आ...या । मोहनि
रूप धर देत्य मोह देवनको अमृत पा......या । खंभ फाड नर.सिंह
ेव प्रहलादका प्राण बचा...या । (मे) प्रहलादकाप्राण बचाया हिरन्या
ुस मारे ॥ धराया ॥ २ ॥ वामन बन राजा पे छल कीना । दे
तीन पगमें लिया सब लोक इन्द्रको दी......ना । ब्रह्माके
कारण हंस रूप धर लीना । सतयुगमें हुवा है ध्रुव भक्त रंग भीना
(ध०) पूजीकी भक्ति देख नारायण अपने लोक से आ...ए । गजकी
पुकार सुनी हरिजुने गरुड छोड कर धा......ए । इक्कीस बार निक्षत्री
करके परशुराम सुख पा......ये (मे) परशुराम सुख पाके भू भार

उतारे ॥ धरया ॥ ३ ॥ वेद व्यास महाराज गुरु सुख दाई । हे चारों वेद नगारे पुराणकीसाम्य चला......ई । राजा दशरथ गृह प्रगट भये चारूं भाई सिया जनक सुता श्री रामचन्द्रको ब्या......ई (उ) वनमें जाय सुग्रीव मित्र हित वाली मारा वं......का। सेतु बांध रत्नाकर सेतु तोड़ दियो गढ़ लंका रावण मार अज्योध्या पधारे हनुमानका डं......का (मे) हनुमानका डंका अहिल्या तारे॥ धरया ॥४॥ शीश मुकट कानो बिच कुंडल सोहे । श्रीनंद नंदन तिरछी चितवन कर जोवे। बंशी बजा कर गोपिनका मन मोहे । गिरधर धर नख पर मान इन्द्रको खोवे (उ०) बुध कहे तुम यज्ञ करो मत असुरों को समझाते। कलयुगमें निकलंकी होवेगा श्रीमद्भागवत गा...ते। चौबीसों औतारकी लीला भक्तनके मन भाते (मे) भक्तमाल मन भाते श्रीकृष्ण बिहारे॥ धरया चौवी सों अवतारके वचन न्यारे न्यारे ॥ ५ ॥

अद्भुत लावनी।

दोहा—साजन सभा स्वरूपके प्रश्न कियो करि जोर।
किसको भज भव निधतिकं संशय मेटो मोर॥

विष्णु, शिव, गणपती, शक्ति अरु भानू। है कौन बड़ा देवनमें जिसको मानू॥ हरि भक्त कहै सुन साजन बात हमारी। है सबमें शिरोमणि श्रीबैकुंठ बिहारी। संख चक्र धर भक्तनके हितकारी। जाहि वेद बेद कर गावत सुरती सारी। जब जब भीड़ पड़त देवनमें भारे। तब तब रक्षा करत है धर धरके अवतार। बड़े बड़े दानव वा दैत्यनको मारे। ध्रुव प्रहलाद आदि ले भक्तनको तारे। महालक्ष्मीजी चरनकी चेरी जानू॥ १॥ है कौन बड़ा देवनमें जिसको मानू॥ अभंगक शिव हम इस कारण नहीं ध्यावें। गल रुंड माल तन चिताकी भस्म लगावें। संग भूत प्रेत गण साथ धतूरा खावें। गणपत शिव पुत्र कुरूप चित नहीं चावें। अबला सदा मलीन है जानत खलक तमाम। नर से जो नारी हुवे जपे शक्तिको नाम। भानू नित भरमण करे पलक न ले विश्राम। कैसे आपने भक्तके सिद्ध करेंगे काम। इस लिये किसीके वचन सुनो मति कानू। है कौन बड़ा देवनमें जिसको मानू॥ २॥ शिव भक्त कहे क्यों झूठ कहत है भाई। त्रिभुवनमें कौन है शङ्कर सम सुखदाई। विष्णु शिव भक्तके सारी सम्पदा पाई। तू बार बार क्या करत बड़ाई॥ जबसे देखे सबनको दिया अदरका दान। शिव सब हीके पूज्य हैं गावत वेद पुरान। काशी पुरी निज धाम जहां देत मुक्तिको दान, आप सदा त्यागी। रहे उत्तम रूपवान समान शिव पुत्र गणपती विघन हरन वरदानू॥ है कौन बड़ा० ॥ ३॥

जब गजाननरूप। शिवको पुत्र बनाया, गणपती अन्त कर क्रोध यह वचन सुनाया। है आदि देवमें सब से पहिले पुजाया, दूंदी ले ब्रह्म, विष्णु, शिव रूप जाया। विघन हरन [illegible]